केरल ज्योति

दिसंबर 2023

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

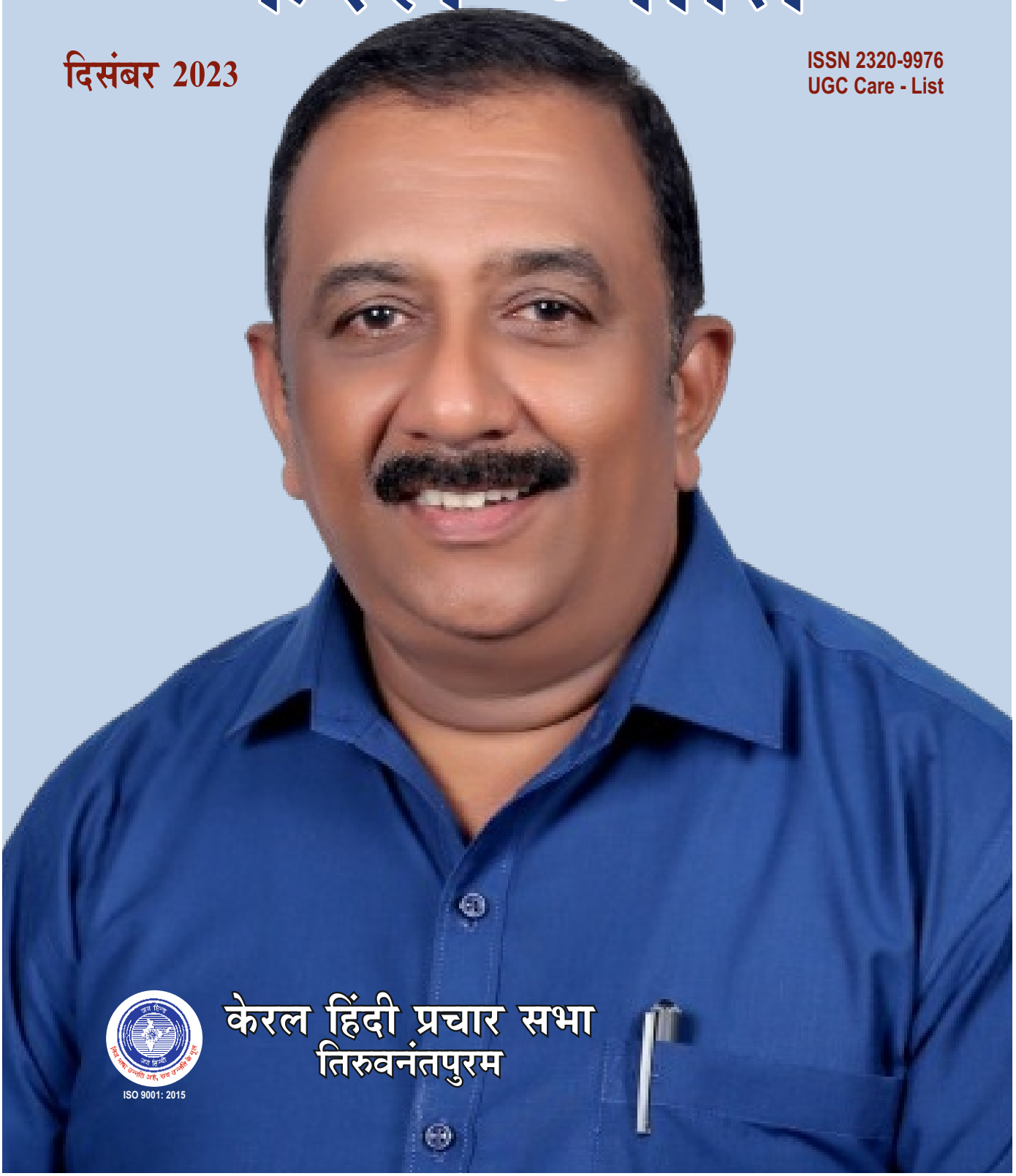

केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम

ISO 9001: 2015

भारतीय भाषा दिवस पर आयोजित सम्मेलन में सभा के मंत्री स्वागत भाषण दे रहे हैं।

उद्घाटन सम्मेलन में आचार्य प्रशिक्षण महाविद्यालय की छात्रा श्रीलक्ष्मी दीप प्रज्वलन करती है।

डॉ.ए.एम.उण्णिकृष्णन (सीनियर प्रोफेसर, केरल पठन विभाग, केरल विश्वविद्यालय) उद्घाटन कर रहे हैं।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 60 दल : 9 अंक: **दिसंबर 2023**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' में स्त्री विमर्श - **डॉ.रम्या प्रसाद** 6

विभाजन : मानवीय मूल्यों की त्रासदी - **डॉ.सुप्रिया.पी.** 8

नाटककार डॉ एन चंद्रशेखरन नायर : एक सामान्य परिचय
डॉ. राजेषकुमार आर 12

नई सदी की कविता के बदलते तेवर - **डॉ. श्रीलता पी वी** 14

सुरेश ऋतुपर्ण की पाँच कविताएँ - प्रस्तुतिः **अधिवक्ता मधु बी.** 17

भारत-पाक विभाजन के दौर में शरणार्थियों की विभीषिका
डॉ.सिन्धु जी नायर 20

"मैं पायल" उपन्यास में चित्रित संघर्षमय क्वीर जीवन - **रेष्मा के आर** 24

वीरांगना झलकारी बाई उपन्यास में राष्ट्रीय चेतना - **सुधा जी** 27

दलित छात्रों की अस्मिता : 'परिशिष्ट' उपन्यास के संदर्भ में
डॉ. शिवकुमार सी एस हड़पद 29

समकालीन हिंदी कविता में भूमंडलीकरण - **डॉ.सुरेंद्र कुमार** 34

हिंदी कविता में स्त्री - **डॉ.एस रज़िया बेगम** 38

फैलता बाज़ार और बढ़ती अपसंस्कृति - **डॉ.अंजली जोसफ** 41

बदलते परिवार बदलती मानसिकता
('चीफ की दावत' और 'वापसी' के संदर्भ में) - **डॉ.गोपकुमार. जी** 45

नादिरा बब्बार की नारी पात्र
('सकूबाई' और ठजी जैसी आपकी मर्ज़ी' नाटकों के संदर्भ में)
अजिता कुमारी.ए.आर 47

'नदी के द्वीप' में नए सिरे से प्रतीक विधान - **डॉ उषा कुमारी जे बी** 51

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 53

मुखचित्र : बिना चुनाव प्रक्रिया के चुने गये नव-निर्वाचित केरल हिन्दी प्रचार सभा के अध्यक्ष एस. गोपकुमार

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- आजीवन चंदा : रु. 2500/- वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
दिसंबर 2023

संपादकीय

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपि

जब भारत के संविधान में 14 सितंबर 1949 में हिंदी को राजभाषा के रूप में घोषित किया था तब देवनागरी में लिखित हिंदी को ही किया था। देवनागरी लिपि संस्कृत भाषा की लिपि होने के कारण प्रस्तुत लिपि देश की विशाल सांस्कृतिक परंपरा से गहराई से जुड़ी हुई है। देश भर में समय-समय पर इस विषय पर भी चर्चा होती रही है कि अगर भारत की कोई सामान्य लिपि हो सकती है तो वह लिपि कौन-सी लिपि हो? अगर भारत की किसी एक लिपि को देश में व्यापक प्रयोग के लिए चुना जाय तो वह लिपि नागरी ही हो सकती है।

यह तथ्य है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच में लिपियों के मामले में विभिन्नता होती है। इसके कारण भाषाओं के बीच में निकटता की कमी है। अगर किसी व्यक्ति को कई भाषाएँ सीखने की कामना हो तो उसको लिपियों के मामले में कठिनाई एक बड़ी समस्या है। अगर भाषाओं को सीखने के लिए नागरी के माध्यम को स्वीकारा जाय तो बड़ी आसानी से समस्या को सुलझायी जा सकती है। मसलन अगर उत्तर भारत का कोई व्यक्ति मलयालम अथवा तमिल सीखना चाहता हो तो नागरी लिपि के माध्यम से उन भाषाओं को बड़ी आसानी से सीख सकता है। इसी प्रसंग में सारी भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपि की उपादेयता है। एक सामान्य लिपि के रूप में नागरी लिपि सार्थक है। अगर सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक अतिरिक्त लिपि के रूप में नागरी को स्वीकार करने से सभी भाषाओं का विकास ही होगा। इसका कारण यह है कि नागरी लिपि में होने से अन्य लिपिवाली भाषाओं को भी प्रयोजन होगा। इसलिए कि नागरी का प्रयोग क्षेत्र अत्यंत विशाल एवं व्यापक है। कुछ लोगों में यह आशंका है कि देवनागरी हिंदी की लिपि है। नागरी केवल हिंदी की लिपि नहीं है; अन्य कई भाषाओं की भी लिपि है। एक सामान्य लिपि को संपूर्ण देश के लिए अपनाने से देश की अखंडता और एकता को कायम रखने के लिए अत्यंत उपयोगी है। फलस्वरूप देश की सांस्कृतिक और भावात्मक ऐक्य को बढ़ावा मिलेगा। हाल ही में केरल हिंदी प्रचार सभा में आचार्य विनोबा भावे की सत्प्रेरणा से स्थापित नागरी लिपि परिषद् और केरल हिंदी प्रचार सभा के संयुक्त तत्त्वावधान में एक सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें संबद्ध विषयों की विपुल चर्चाएँ हुईं। इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिए हिंदी प्रचार सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) मधु बी ने अथक परिश्रम किया। केरल ज्योति परिवार की तरफ से उस सम्मेलन को सफल बनाने वाले सबको हार्दिक शुभकामनाएँ।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' में स्त्री विमर्श

डॉ.रम्या प्रसाद

पुरुष प्रधान व्यवस्था ने स्त्री को सदैव उसके अधिकारों से वंचित रखा। समाज में स्त्री को कभी भी व्यक्ति रूप में मान्यता नहीं दी। बीसवीं सदी के अंत तक आते -आते संसार भूमंडलीकरण के दौर से गुज़र रहा है। नासिरा शर्मा के अनुसार -'औरत अधिक ईमानदार ,निष्ठावान, कर्मठ, धैर्यवानऔर बलिदान करनेवाली एक ऐसी जीव है जिसका मुकाबला दुनिया का दूसरा प्राणी नहीं कर सकता है।'[1] स्त्री विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं को तथा संभावनाओं को तलाश करने वाली दृष्टि है। यह दृष्टी एक ओर संपूर्ण सामजिक जीवन को देखने और रचने का माध्यम बनती है , तो दूसरी ओर साहित्य में स्त्री जीवन की जटिल वास्तविकताओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्तिकी शक्तिभी है।

मैत्रेयी पुष्पा बहुमुखी प्रतिभा की धनि हैं। उन्होनें चार कहानी संग्रह ,बारह उपन्यास ,एक नाटक ,एक कविता संग्रह ,दो स्त्री -विमर्श से संबंधित पुस्तकें लिखी हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में नारी जगत के प्रश्नों को ,भाव विश्व को उजागर करने का प्रयास किया है। धर्म ,दर्शन ,अर्थ ,संस्कृति ,राजनीति, साहित्य आदि क्षेत्रों में नारी अपना स्थान रखना चाहती हैं।उन्होंने उसे कथा, उपन्यास जैसी साहित्यिक विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मैत्रेयी पुष्पा नारी संवेदना के विविध पक्षों को अपनी रचनाओं में उजागर करती हैं। उनकी रचनाओं में पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का अंकन है। उनके उपन्यासों में जन्म पाने वाली नारियाँ नारी समस्या की समस्त मान्यताओं को चुनौती देती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा उपन्यास तथा स्त्री विमर्श के क्षेत्रों में सिद्धहस्त लेखिका हैं।

'इदन्नमम' मैत्रेयी पुष्पा के अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। नायिका प्रधान उपन्यास होने के कारण इसमें स्त्री विमर्श के कई पहलुओं का चित्रण अभिव्यक्त हुआ है। उपन्यास की नायिका 'मन्दाकिनी', जो सामाजिक ,आर्थिक ,राजनैतिक तथा मानसिक धरातल पर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। उपन्यास के मन्दा समस्याओं के कारण टूटती या झुकती हुई नहीं दिखती। लेखिका ने आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत कर सभी समस्याओं को नष्ट करके मन्दा को देवी नहीं बनाया।वह एक साधारण नारी के सामान हर समस्या से जूझती हुई दिखाई देती है। मन्दा में गजब की संगठन शक्तिहै ,अपने इसी शक्तिके सहारे वह व्यवस्था के साथ टक्कर लेती है। जो मन्दा फ्रॉक पहने हुए उपन्यास में उपस्थित होती है ,वह मन्दा आगे चलकर गाँव के लोगों की सहायता करती हुई दिखाई देती है। डॉ.हरजीत के अनुसार - 'फ़िराक पहने नन्हीं सी मन्दा उपन्यास में बड़ी होती है। और अंत में अपने समाज के सारे अच्छे बुरे ढाँचे के बीच से अपनी पहचान बनाती है। 'वह है एक जुझारूसम्पूर्ण स्त्री।'[2] उसकी यह लम्बीयात्रा काँटों से भरी हुई है। मन्दा के इस संघर्ष यात्रा को उपस्थित करते हुए लेखिका ने देहात से जुडी हुई कई समस्याओं पर प्रकाश डाला है। विधवा की समस्या, विधवा पुनर्विवाह की समस्या ,वेश्या-जीवन की समस्या, कुंवारी लड़की की समस्या आदि कई समस्याओं को विभिन्न चरित्रों के माध्यम से अंकित किया है।

'इदन्नमम' नायिका प्रधान उपन्यास होने के कारण इसमें स्त्री विमर्श के कई पहलु चित्रित हुए हैं। इसमें मन्दाकिनी जब अपने गाँव वापस लौटती है तब गाँव का शहरीकरण हुआ है, ग्रामीणों की खेती और भूमि नष्ट हो चुकी है।गाँव में अस्पताल खोलकर अपने पिता की इच्छा की पूर्ती के लिए आयी मन्दा ग्रामीणों की विवशता, लाचारी एवं गरीबी से दुखी हो जाती है।महाराज, जो पूर्वाश्रम में मज़दूर नेता था, उनके उपदेश पर मन्दाक्षयग्रस्त समाज को सुधारने की प्रेरणा लेती है। यहाँ से मन्दा के माध्यम से लेखिकास्त्री - विमर्श का नया पहलू हमारे सम्मुख रखती है। गाँव में रहनेवाली मन्दा अब हमें नए रूप में नज़र आती है। वह गाँव के प्रधान एवं अन्य ग्रामीणों के सहयोग से ट्रेक्टर खरीदकर ठेकेदार की मदद से ,किसानसे भिखारी बने गाँववालों की समस्या को एक हद तक सुलझाकर अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत करती है। मैत्रेयी पुष्पाद्वारा मन्दा को जन-आंदोलन का नेतृत्व सौंपना हिंदी के आँचलिक उपन्यासोंमें एक नए बोध के उदय के रूप में देखा जा सकता है। वह ग्राम परिवर्तन चाहता है। थोड़ापरिवर्तन भी होता है जिसके केंद्र में मन्दा का साहस है।

इतना सब कुछ मन्दा के द्वारा किए जाने पर भी अनेक शत्रु यों उत्पन्न होते हैं। वह लोग कुआरी लड़की के मान-मर्यादाऔर इज्जत का ध्यान दिलाकर मन्दा का जीना हराम कर देता है। अपने हितैषियों के उपदेश की परवाह किए बिना मुसीबतों और झंझटों का सामने करते हुए भी अन्याय के खिलाफ लड़ने का दृढ संकल्प लेकर सोनपुरी वापस आनेवाली मन्दा सचमुच नारी-शक्तिका प्रतीक है। मन्दा अधिकारों के लिए किए गए आंदोलनों की आत्मा है। वह सोनपुरा के शोषितों के साथ जुड जाती है।हालातों की भुक्तभोगी मन्दा दो स्तरों पर लड़ती है। एक स्त्री होने की पहचान को कायम करने की और दूसरी दुर्बलों के शोषण मुक्ति की।स्त्री अनादिकाल से उपभोग की वस्तु समझी जा रही है, किन्तु समय मूक ,बधिर स्त्री को आज हर क्षेत्र से मुक्तकरना चाहता है। आज स्त्री की स्थिति में परिवर्तन का विचार विश्वव्यापी विचार बना हुआ है। मैत्रेयी जी प्रस्तुत धारा में तन ,मन,धन से जूँझ जाती है। स्त्री मुक्तिके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है। 'इदन्नमम' में मन्दा का स्वर मैत्रेयी जी का स्वर है। मन्दा स्वयं स्त्री संघर्ष का धधकता हुआ भाला है जो स्त्री भोगी पुरुषों के पेट में तह तक पहुँचती है। अनेक अपमानों के साथ मन्दा के चरित्र का महत्त्व व्यक्तकरता है।किसी ने उसे काल भैरवी ,महाकाली आदि कहता है तो किसी ने उसे लक्ष्मीभाई नाम देता है। एक बात तो स्पष्ट है कि आज भी आँचल में नारी केवल शोषण एवं उपभोग की वस्तु मात्र है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में भी यह महत्वपूर्ण कृति है। इसमें औरतों और वंचितों की संघर्ष गाथा है। इसमें सामन्ती समाज के हिंसक अंतर्विरोधों और दोहरे चरित्र को जानने -समझने के साथ -साथ बदलते परिवेश में अन्य विकल्पों के अनंत की संभावनाओं की तलाश में निकली ग्रामीण,अनपढ़,अँगूठा छाप औरतों की व्यथा -कथा है जो पाठक में अत्यंत प्रभावशाली हो गई है। कुचले लोगों की पीड़ा को मुक्तिका स्वर देने के लिए मन्दा प्रतिज्ञाबद्ध है। अरुणा दुबलिश कहती है - 'मैत्रेयी पुष्पा की नारी पात्रों में सतर्क सामाजिक चेतना और आत्मविश्लेषणात्मक विवेक है जो नारी विमर्श को उँचाइयाँ प्रदान करता है। इनके उपन्यासों की नारी परंपरागत चेतना से आगे बढ़कर उत्तर आधुनिक समाज की नारी की छवि को सामने रखता है फिर भी वह ग्लानियत से मुक्तिनहीं है।'[3]

'इदन्नमम' में चित्रित सभी नारी पात्र किसी न किसी समस्या से संघर्षरत हैं। उपन्यास के कुछ पुरुष पात्र इस संघर्ष में नारी को सहयोग देते हुए दिखाई देते हैं , तो कुछ पुरुष पात्र इस संघर्ष में नारी का शोषण और रोज नई समस्या को खड़ा करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। उपन्यास में तीन पीढ़ियों की नारियों को बउ (दादी), प्रेमा (माँ), मन्दाकिनी (नायिका) को एक सूत्र में बाँधकर लेखिका ने इस संघर्ष गाथा को उपस्थित किया है। इस उपन्यास की तीन नारियों की अपनी -अपनी ज़िन्दगीहै, अपने - अपने आदर्श है। नायिका मन्दाकिनी प्रगतिशील आधुनिक विचारों वाली युवती है। 'मन्दा' में 'निज' को त्यागकर सामाजिक न्याय तथा प्रगति के उद्देश्य से आगे बढ़ने की नियति है।इसमें नायिका की शक्ति भी केवल अपनी निजी न होकर वंचितों की संघर्ष - चेतना से पोषितहै। 'इदन्नमम' उपन्यास यह प्रभाव छोड़ने में पूरी तरह सफल रहा है कि आज भी पुरुष सत्ता की प्रधानता है। वह सबकुछ करके मूंछों पर ताव देता रहता है और नारी की ज़रा- सी मुक्तिठसकी बरबादी का कारण बन जाती है, किन्तु अब नारी शक्तिजाग उठी है अब सामाजिक ढाँचे को तोड़ती हुई न केवल वह अपने अधिकारों को सुरक्षित रखेंगी ,वरन समाज को नई दिशा देने में भी आगे बढ़ायेंगी। 'इदन्नमम' निरंतर शोषण के विरोध में विद्रोह करने के लिए संकल्पबद्ध नारी की कहानी है।निरंतर शोषण का शिकार बन जाती है लेकिन वह कहीं भी झुकती दिखाई नहीं देती।

नारियों की प्रतिनिधि बनकर अन्याय के विरोध में लोगों में जागृति निर्माण करके उसे समाप्त करने की प्रेरणा भी इस उपन्यास में मिलता है।अनादिकाल से पुरुष प्रधान समाज की शिकार बनती नारी को भिन्न रूप प्रदान करके उर्जा और उत्साह का ताज़ा चित्र 'इदन्नमम' उपन्यास में प्राप्त होता है। 'इदन्नमम'अपनी उपरी सादगी और सरलता के बावजूद एक बहुत सी जटिल और संश्लिष्ट उपन्यास है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का अंकन है। उनके उपन्यासों में जन्म पाने वाली नारियाँ नारी समस्या की समस्त मान्यताओं को चुनौती देती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. औरत के लिए औरत,नासिरा शर्मा, पृष्ठ -6
2. दसवें शतक के हिंदी उपन्यास स्त्री देह के पार भाषा, मई-जून 1996 , पृष्ठ -97
3. माध्यम, अप्रैल -जून - 2005

गेस्ट लेक्चरर , सेंट थॉमस कॉलेज, रान्नी

विभाजन : मानवीय मूल्यों की त्रासदी

डॉ.सुप्रिया.पी.

"सदियों से अर्जित एक राष्ट्र का ज़ज्बा, सांस्कृतिक एकता, जातीयता, मानवीय संबंध सांप्रदायिक आग की लपटों में जलकर राख हो गये थे। इतना बड़ा नर-संहार, संभव है, पहले कभी हुआ हो, मगर परस्पर मिलजुलकर रहनेवाली एक ही संस्कृति, जातीयता और राष्ट्रीयता में पली-ढली, समान भाषाएँ बोलनेवाली, एक-से कौमी धागों में बंधी जातियों का देशांतरण- हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों का, सांप्रदायिक आग की लपटों में झुलसते हुए स्वदेश-त्याग, विश्व इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। इतने बड़े पैमाने पर, इस तरह की ट्रेजेडी, विश्व में पहले कभी घटित नहीं हुई थी।"[1]

भारत का विभाजन एक ऐतिहासिक त्रासदी है। देश की आज़ादी हर हिन्दुस्तानी के लिए प्यारी थी, लेकिन उसके साथ तोहफ़े में आई विभाजन की विभीषिका ने देश के अधिकांश लोगों के मन में टीस उत्पन्न की। दो राष्ट्रों का निर्माण आधार दो अलग कौमों की अवधारणा थी। मुहम्मद अली जिन्ना ने भी यही तर्क दिया कि हिन्दू-मुस्लिम एकता एक कोरा स्वप्न मात्र है। उनमें रोटी-बेटी का संबंध नहीं है। देश का नया भूगोल बना, नया इतिहास बना, नयी सरहदें बनी। सरहदों के आर-पार कई लोग बेघर हुए, अपनी ज़मीन-ज़ायदाद छोडनी पड़ी, अपनी अस्मिता गँवाई और शरणार्थी बनके रहने पर मजबूर हुए। विभाजन एक ऐसी त्रासदी बनकर टूटी जिसने सरहदों से दिलों में दरार पैदा की। संवेदनशील रचनाकार ने विभाजन से उपजे विस्थापन को साहित्य में चित्रित किया, विभाजन की भयावहता को शब्दबद्ध करने का कथा-साहित्य माध्यम बना। ऐसे कई रचनाकार रहे जो उस युग में जिंदा रहकर उन विभीषिकाओं के प्रत्यक्षदर्शी बने तो कुछ रचनाकार परवर्ती युग में उन हादसों से व्यथित होकर इस विषय पर रचनारत हुए। यहाँ चुनी हुई उर्दू-हिंदी कहानियों में चित्रित विभाजन के दर्द एवं उससे उपजे विस्थापन को केंद्रित कर चर्चा होगी।

उर्दू में सआदत हसन मंटो, कुर्तुल एन हैदर से लेकर हिंदी में कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, महीप सिंह, कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर जैसे कई रचनाकार इस विषय को लेखनबद्ध कर चुके हैं। उर्दू कथाकार मंटो एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने विस्थापन का दर्द झेला और उन्हें हिंदुस्तान छोड़कर पाकिस्तान जाना पड़ा। बँटवारा मंटो की ज़िंदगी में एक हादसा था और ठंडा गोश्त, खोल दो, टोबा टेकसिंह, टिथवाल का कुत्ता जैसी कहानियाँ मंटो के उस हादसे की टीस से उपजी रचनाएँ हैं जो पाठक की सोच को झकझोर कर रख देती हैं। मंटो ने 'टोबा टेकसिंह' में विभाजन के बाद जो मुसलमान पागल, हिंदुस्तान के पागलखानों में हैं, उन्हें पाकिस्तान पहुँचाने और हिन्दू और सिक्ख पागल जो पाकिस्तान के पागलखानों में मौजूद हैं, उनको हिंदुस्तान के हवाले करने का निश्चय किया गया। "पागलखाने में वे सब पागल, जिनका दिमाग़ पूरी तरह ख़राब नहीं था, इस असमंजस में थे कि वे हिंदुस्तान में हैं अथवा पाकिस्तान में। अगर हिंदुस्तान में हैं तो पाकिस्तान कहाँ है और अगर वे पाकिस्तान में हैं तो यह कैसे हो सकता है कि कुछ अरसा पहले वे, यहीं रहते हुए भी, हिंदुस्तान में थे।"[2] पागलों के बीच निरंतर चर्चा होने लगी पाकिस्तान क्या होता है?, कोई पाकिस्तान और हिंदुस्तान की गंभीर समस्या पर भाषण देता, कोई खुद को मुहम्मद अली जिन्ना घोषित करता, कोई उन तमाम हिन्दू-मुसलमान नेताओं को गालियाँ देता जिन्होंने मिल-मिला कर हिंदुस्तान के दो टुकड़े कर दिए।

पंद्रह बरस से उस पागलखाने में रहने वाला सिक्ख पागल बिशन सिंह हर दूसरे पागल से अपने शहर टोबा टेकसिंह के बारे में पूछता कि वह हिंदुस्तान में है या पाकिस्तान में। उसे किसी से भी सही जवाब नहीं मिला। उसके परिवारवाले भी अब उससे मिलने नहीं आते थे जिनसे वह इसकी सही जानकारी ले पाता। बिशन सिंह के पुराने मित्र फ़ज़लदीन जब पागलखाने में उससे मिलने आता है तब वह बताता है कि बिशन सिंह का पूरा परिवार हिंदुस्तान चला गया और टोबा टेकसिंह अब पाकिस्तान में है। तबादले के दिन वागा की सरहद पर जब पागलों का तबादला होने लगा तो बिशन सिंह हिंदुस्तान की तरफ जाने

से इंकार करता है क्योंकि टोबा टेकसिंह पाकिस्तान में है। वह सरहद के बीच में डट कर खड़ा हो गया और लंबे समय तक खड़े रहते फिर वहीं निढाल हो गया। उधर काँटेदार तारों के पीछे हिंदुस्तान था, इधर ऐसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान ! बीच में, ज़मीन के उस टुकड़े पर, जिसका कोई नाम नहीं था, टोबा टेकसिंह पड़ा था।"[3] टोबा टेकसिंह का पागल सिक्ख जो हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बँटवारे को स्वीकार नहीं कर पाता वास्तव में मंटो का ही वह रूप है जो इस बंटवारे के खिलाफ़ अपनी असहमति की आवाज़ अपने साहित्य में दर्ज करता रहा।

मंटो की कहानी 'टिथवाल का कुत्ता' के कुत्ते की नियति भी टोबा टेकसिंह से अलग नहीं। पहाड़ी सरहद पर पाकिस्तान और हिंदुस्तान के सिपाही अपने मोर्चे में आए भटके हुए कुत्ते की मजहब का अनुमान करते हुए उसे नाम देते है और उसके गले में उसकी पहचान को बांध देते है। एक जवान का कथन अब कुत्तों को भी या तो हिंदुस्तानी होना पड़ेगा या पाकिस्तानी"[4] समाज की उस समय की मानसिकता की ओर इशारा करता है जो न केवल मनुष्य को बल्कि पशु वर्ग को भी अपनी चपेट में ले लेता है। दोनों मोर्चों से लगातार हुई फायरिंग में वह बेचारा कुत्ता मारा गया और वह शहीद घोषित हुआ। टोबा टेकसिंह और टिथवाल का वह कुत्ता दोनों ही उस जनता का प्रतीक है जिसने इस अर्थहीन राजनीति की वजह से तकलीफ़ सही और कुर्बान हुई।

विष्णु प्रभाकर की कहानी मेरा वतन का अर्द्ध विक्षिप्त व्यक्तिएक दूसरा टोबा टेकसिंह है जो कभी लाहौर का जाना-माना वकील था। मिस्टर पुरी को विभाजन के दौरान लाहौर में अपना मकान, अपनी वकालत, सब कुछ छोड़कर अमृतसर जाना पड़ा। अपने परिवारवालों को बिना बताए वह बीच-बीच में लाहौर आ जाता और उन गलियों में, अपने मकान के आस-पास, कचहरी के आस-पास तहमद लगाए, फौज कैप ओढ़े अर्द्ध विक्षिप्त हाल में भटकता रहता। मोहल्ले का एक दुकानदार जब खैरियत पूछता है तब वह अपने वतन के बारे में यूँ कहता है "वतन, धरती, मोहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं... सबसे बड़ा मजहब है, दीन, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बंदा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वह मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।"[5] उस दिन शरणार्थियों की भीड़ में से एक मुसलमान मिस्टर पुरी को पहचान जाता है और जेब से पिस्तौल निकाल गोली चला देता है। उनके पुराने मित्र हसन उनसे वापस लाहौर आने का कारण पूछता है, तव वह कहता है -"मैं यहाँ क्यों आया? मैं यहाँ से जा ही कहाँ सकता हूँ? यह मेरा वतन है, हसन ! मेरा वतन !"[6] विस्थापन हमेशा पीड़ादायक होता है। हर व्यक्ति के लिए अपनी ज़मीन से, उससे जुड़ी स्मृतियों-अनुभूतियों से दूर होना कष्टदायक होता है।

मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' के बुजुर्ग गनी मियाँ साढ़े सात साल बाद लाहौर से अमृतसर आते है अपने मकान को देखने। बाज़ार बांसां अमृतसर की गरीब मुसलमानों की बस्ती थी जो विभाजन के दंगों में आग में जलकर ख़त्म हो गयी। उस आग में सिर्फ मुसलमानों के घर ही नहीं जले, बल्कि उन मकानों में रहने वाले भी शहीद हो गए। उस वीरान बाज़ार में जली हुई इमारतों के बीच गनी मियाँ अपना मकान ढूँढ रहे थे जो विभाजन से छह महीने पहले उन्होंने बनाया था। गनी मियाँ के लाहौर निकलने के कुछ दिन बाद उनके बेटे चिरागदीन और उसके बीवी-बच्चों की हत्या धोखे से रक्खा पहलवान करता है। हत्या के दौरान पहलवान बार-बार यही कहता है "तुझे पाकिस्तान दे रहा हूँ, लें !"[7]

गनी मियाँ के मकान पर पहलवान की नज़र थी जिस पर वह कब्ज़ा करना चाहता था लेकिन किसी ने उस मकान को आग लगा दी। अब उस मलबे की रखवाली करता वह मलबे का मालिक बना फिरता है। सालों बाद गनी को देखकर पहलवान में घबराहट होती है। अपने बेटे के हत्यारे को पहचाने बिना गनी आत्मीयता से पहलवान से मिलता है और शुभाशीष देते हुते विदाई लेता है। उस रात भी मलबे का मालिक बने रक्खे पहलवान को एक कुत्ता भौंक-भौंक कर वहाँ से भगा देता है। बँटवारे और उससे जुड़ी पीड़ाएँ मानवीय संस्कृति की त्रासदी है। हर व्यक्तिके लिए उसकी जन्मभूमि प्यारी होती है। अपना गाँव, अपनी गली, अपना वतन, अपने रिश्तेदारों को छोड़ विस्थापित हो किसी अन्य देश में शरणार्थी बनकर जीना एक बड़ी क्रूरता है।

कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' विभाजन की इसी क्रूरता पर एक तीखी टिप्पणी है। सोबती जी के शब्दों में वह दौर ऐसा था जब इंसानियत किसी प्रलय के दौर में हो। मार-काट और न ख़त्म होने वाली बेरहमियाँ, आस-पड़ोस और अपने घर-परिवार के सगे-संबंधियों के मरने की खबरें सब भयानक थी। अपने मौसा जी से जालंदर के शाहनी की खबर सुनी जिनको अपनी हवेली छोड़ हिंदुस्तान भेजा जा रहा था। वह तस्वीर कृष्णा सोबती की आँखों के आगे लटकी रही और एक रात उन्होंने सिक्का बदल गया लिखी। वे कहती है "लिखने का बाद कुछ ठंडक-सी महसूस की। हैरानी यह कि सिक्का बदल गया लिखने के बाद मुझे अपना तापमान बॉयलिंग पॉइंट से नीचे आता लगा।"[8]

सिक्का बदल गया की शाहनी के सामान्य दैनिक व्यवहार के साथ कहानी आगे बढ़ती है और उसी के अत्यंत सामान्य प्रतिक्रिया के साथ समाप्त हो जाती है। जिस हवेली में वह दुल्हन बनकर आई थी, उसके आसपास के मीलों फैले खेत, दूर -दूर तक फैली हुई ज़मीनें और कुएं सब पराये हो गए थे। हिन्दू परिवारों को सीमा की दूसरी ओर ले जाने के लिए ट्रकें आ गई हैं। शाहनी के भीतर गहरी वेदना है, परंतु वह तय करती है कि वह रो-रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लांघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन वह रानी बनकर आ खड़ी हुई थी। सभी गाँववाले शाहनी को भीगी आँखों से विदा कर रहे हैं। सब निस्सहाय थे क्योंकि राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है। रात को कैंप की ज़मीन पर पड़ी वह सोचने लगी राज पलट गया है...सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आई... शाहनी के लिए बंटवारे के कारण हुकूमत के बदल जाने का, सिक्का बदल जाने का कोई अर्थ नहीं है। उसे तो मानवीय मूल्यों के सिक्के के बदल जाने, संबंधों को निरर्थक बना दिये जाने का दुःख है। अपनी साझा जड़ों से कटने का दर्द सिर्फ शाहनी का ही न होकर दूर तक फैलता दिखाई देता है। अविभाजित भारत के सामान्य व्यक्ति चरित्र का इतना सहज-मार्मिक चित्र भारतीय भाषाओं के साहित्य में नहीं उभरा है। इस कहानी को हिन्दी की ही नहीं, भारतीय भाषाओं की एक उपलब्धि के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

पूरे हिंदुस्तान में सांप्रदायिक दंगों के फलस्वरूप तबाही मची हुई थी। महिलाओं की इज्ज़त लूटना, बच्चों की निर्मम हत्या, आगजनी से पूरा वातावरण आतंकित था। विभाजन के दौरान पाकिस्तान से हिंदुस्तान की ओर आने वाली ट्रेनों के दहशत, असुरक्षा और अविश्वास से भरे यात्रियों की मानसिकता भीष्म साहनी के 'अमृतसर आ गया' कहानी में बयान की गयी है। उस दौर में लोगों के मन में गहरे असुरक्षा का भाव पैदा हो गया था। रचनाकार के शब्दों में - "जगह-जगह दंगे भी हो रहे थे, और कौम-ए-आज़ादी की तैयारियाँ भी चल रही थीं। इस पृष्ठभूमि में लगता, देश आज़ाद हो जाने पर दंगे अपने-आप बंद हो जायेंगे। वातावरण में इस झुटपुट में आज़ादी की सुनहरी धुल-सी उड़ रही थी और साथ ही साथ अनिश्चय भी डोल रहा था, और इसी अनिश्चय की स्थिति में किसी-किसी वक्त भावी रिश्तों की रूपरेखा झलक दे जाती थी।"[9] रेल के डिब्बे में यात्रियों के हाव-भाव, वतन छूटने का दर्द, भविष्य की चिंताएँ, सह यात्रियों के प्रति अविश्वास, दंगों से आतंकित चेहरों का ऐसा चित्रण किया है जो पाठक के सामने उस भयावह वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। कहानी का दुबला बाबू मुसलमान मुसाफिर को चलती गाड़ी पर चढ़ने से रोकता है और और लोहे की छड़ से उस पर वार करता है। दहशत और अविश्वास के उस वातावरण में आदमी कितना कमीना बन सकता है इसी का चित्रण कहानीकार ने किया है। विभाजन के फलस्वरूप इंसानी रिश्तों में जो परिवर्तन और मूल्यों का जो विघटन हुआ उसे यहाँ देखा जा सकता है।

देश विभाजन और उसके फलस्वरूप हुए विस्थापन ने मानव के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में असुरक्षा और दहशत फ़ैला दी। कुछ रचनाकार तो भुक्तभोगी थे जिन्होंने अपनी लेखनी में आँखों देखा बयान किया। कुछ अन्य रचनाकार आस-पास की घटनाओं से व्यथित हो अपनी संवेदना को शब्दबद्ध करते रहे। इन कहानियों से गुजरते हुए हम पाठक न केवल टोबा टेकसिंह, शाहनी, गनी मियाँ, मिस्टर पुरी की वेदना से रूबरू होते हैं, बल्कि टिथवाल के कुत्ते की नियति के भी गवाह बनते हैं। पूरे देश ने आज़ादी का अमृत महोत्सव बड़े पैमाने पर मनाया। आज के संदर्भ में यह जरूरी हो गया है कि नयी पीढ़ी को उस

भयानक त्रासदी का ज्ञान कराया जाए। इतिहासकार केवल घटनाक्रमों के आधार पर इतिहास गढ़ता है। साहित्य में विभाजन और विस्थापन का जो सत्य बयान हुआ वह हर उस संवेदनशील पाठक के पैरों तले की ज़मीन खिसका दें। हमें यह आशा करनी होगी कि आगे साहित्य में टोबा टेकसिंह, शाहनी, गनी मियाँ और मिस्टर पुरी जैसे चरित्रों से हमारी मुठभेड़ न हो।

संदर्भ सूची

1. नरेंद्र मोहन, विभाजन की त्रासदी भारतीय कथा-दृष्टि, पृष्ठ 13
2. सआदत हसन मंटो, आखिरी सैल्यूट, 2018 संस्करण, पृष्ठ 202
3. वही, पृष्ठ 207
4. नया ज्ञानोदय, सरहद विशेषांक, मई 2014, पृष्ठ 57
5. कितने हिंदुस्तान भारत विभाजन संबंधी कहानियाँ, संपादक डॉ. फणीश सिंह, 2017 संस्करण, पृष्ठ 49
6. वही, पृष्ठ 51
7. वही, पृष्ठ 34
8. नया ज्ञानोदय, फरवरी 2018, पृष्ठ 15
9. कितने हिंदुस्तान, भारत विभाजन संबंधी कहानियाँ, संपादक डॉ. फणीश सिंह, 2017 संस्करण, पृष्ठ 56

सहायक आचार्य
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय
कासरगोड, केरल - 671320
मोबाइल : 9747293735
ई-मेल : supriya@cukerala.ac.in

भूलसुधार

केरल ज्योति के नवंबर 2023 अंक में "अभिशप्तता से आत्मविश्वास की ओर (सुशीला टाकभौरे की रचनाओं की ओर से एक यात्रा)" शीर्षक लेख की लेखिका डॉ.पूर्णिमा.आर, असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, आलप्पुष़ा, के चित्र के बदले अन्य एक विदुषी का चित्र गलती से छप गया है। लेखिका का चित्र यहाँ लगाया गया है। उक्त भूल के लिए खेद प्रकट करता हूँ। - संपादक

केरल ज्योति के पाठकों को क्रिस्तुमस एवं नव वर्ष की शुभकामनाएँ!

अधिवक्ता मधु.बी.
मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

नाटककार डॉ एन चंद्रशेखरन नायर : एक सामान्य परिचय

डॉ. राजेषकुमार आर

पद्मश्री डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर केरल के अग्रणी हिंदी साहित्यकार थे। उनका जन्म 29 दिसंबर 1923 में केरल के कोल्लम जिले के शास्ताम्कोट्टा में और निधन 2022 जनवरी 10 में हुआ।वे तिरुवनंतपुरम में स्थित केरल हिंदी साहित्य अकादमी के संस्थापक हैं। उन्होंने कुरु क्षेत्र जागता है, द्विवेणी , बदला , सेवाश्रम , युगसंगम, देवयानी (नाटक), हार की जीत, प्रोफसर और रसोइयाँ(कहानी संग्रह), चिरञ्जीवि (महाकाव्य), सीतम्मा(उपन्यास), आत्मकथा, केरल के हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास, अध्यात्म रामायाण का मलयालम गद्य अनुवाद, चित्रकला सम्राट् राजा रविवर्मा सहित कई हिंदी और मलयालम किताबें लिखी हैं। भारत केसरी मन्नत्तु पद्मनाभन की जीवनी आपकी रचना वैभव का प्रकटतम उदाहरण माना जाता है।केरल हिन्दी साहित्य अकादमी की त्रैमासिक शोधपत्रिका के संस्थापक और मुख्य संपादक थे। उन्होंने कई साहित्यिक रचनाएँ की हैं, जिनमें कविता, जीवनी,उपन्यास और नाटक शामिल हैं। उन्हें सौहार्द पुरस्कार, प्रेमचन्द पुरस्कार, विश्वहिन्दी सम्मान आदि अनेक पुरस्कार प्राप्त हैं। उन्हें उनके हिंदी प्रचार और साहित्यिक सेवाओं के लिए हाल ही में राष्ट्र ने पद्मश्री से सम्मानित किया है। चंद्रशेखरन नायर के रचनाकार्यों पर आधारित शोध कार्य केरल के अंदर और बाहर के विश्वविद्यालयों में किए गए हैं। उन्हें भारत के कई प्रतिष्ठित हिंदी लेखकों के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। केरल हिन्दी साहित्य अकादमी ने केरल के शोधकर्ताओं और लेखकों के लिए पुरस्कारों की स्थापना की है। वे लंबे समय तक महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम में तथा एन .एस .एस के विभिन्न कॉलजों में प्रोफसर रहे हैं।

नाटककार डॉ.एन.चंद्रशेखरन नायर

डॉ.एन.चंद्रशेखरन नायर ने हिन्दी में यों तो कहानी, कविता, निबंध,आलोचना,जीवनी आदि बहुत कुछ लिखा है किंतु उनका सर्वाधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण कृतित्व नाटक के क्षेत्र में हैं। द्विवेणी, बदला, कुरु क्षेत्र जागता है, युग संगम, सेवाश्रम, देवयानी तथा धर्म और अधर्म एन.चंद्रशेखरन नायर के मुख्य नाट्य रचनाएँ हैं।

'द्विवेणी' : एन .चंद्रशेखरन नायर की पहली नाट्य कृति है द्विवेणी। व्यापक मानवीय पृष्ठभूमि पर लिखित द्विवेणी नाटक वर्तमान मानव की विभीषिकाओं को दृष्टि में रख कर रचा गया है। इस नाटक के पात्र अनुकंपा, सहिष्णुता,उदारता, विवेक, मन, धर्म कन्या, शास्त्र पुरुष तथा भक्ति के प्रतीक हैं। द्विवेणी नाटक के द्वारा यह दिखाया गया है कि जब तक बुद्धि तथा हृदय में समन्वय नहीं होता तब तक शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती। उनके लिए त्याग जैसे महान मानवीय गुण अनिवार्यतः आवश्यक हैं।

बदला : द्विवेणी नाटक के बाद लिखा हुआ एकांकी है बदला। पति-पत्नी के संबंधों को लेकर लिखी गई यह नाट्य रचना आर्दशवादिनी नीरादेवी के चरित्र को केंद्र में रखकर रची गई है जो मानवीयता की प्रतिमाई है किंतु चरित्र की अत्यंत दृढ है। पति -पत्नी के संबंधों को लक्ष्य करके इस एकांकी लिखा गया है। नीरा देवी का संरक्षक नरेन्द्रदेव, देवकी नाथ , देवकी नाथ की पहली पत्नी और पन्द्रह वर्ष का बालक लाल की माता नीरादेवी, लाल ,मल्लू और छोटी बदले सामाजिक नाटक के मुख्य पात्र हैं।

कुरुक्षेत्र जागता है : सबसे पहले कुरुक्षेत्र जागता है 1961 में प्रकाशित हुआ था।कुरु क्षेत्र जागता है एक ऐतिहासिक नाटक माना गया है। करनाल का प्रतापी तथा वीर महाराजा राजसिंह , महाराजा का परम मित्र बिन्दु , महाराजा की माता महारानी , महाराज की कुलीन एवं सुन्दर धर्म पत्नी माया देवी और माया देवी की सहेली मालती इस नाट्य रचना के मुख्य पात्र हैं। भारत की आज़ादी के बाद सरदार वल्लभ भाई पटेल ने सभी राजाओं को भारत की सामान्य प्रजा बना दी थी। नाटक के नायक राजसिंह ऐसे ही व्यक्तिहै जो पहले तो इस समानतावाद के विरुद्ध संघर्ष करना चाहते हैं किंतु बिंदु और महारानी के संसर्ग से उनमें परिवर्तन आता

है और अंत में वे अपनी प्रजा के एक आदर्श सेवक बन जाते हैं। इस तरह भारत के सर्वोदयी मानसिक बदलाव का अच्छा चित्र प्रस्तुत नाटक में चित्रित हुआ है। वास्तव में कुरु क्षेत्र जागता है नाटक में नाटककार का मुख्य उद्देश्य सर्वोदय के सिद्धांतों का प्रचार करना रहा है। राजसी जीवन यापन करनेवाला राजा सेवक बनकर जनगण के साथ मिलता है।

युगसंगम: युगसंगम एक सांस्कृतिक नाटक है।श्रीराम, लक्ष्मण , श्रीकृष्ण,अर्जुन,महाबलि, शुक्राचार्य, श्रीकृष्ण के भाई ,महात्मा गांधी, दुश्शला और गांधीजी के सहायी1964 में प्रकाशित युगसंगम लघु नाटक के मुख्य पात्र हैं। इसमें यह कल्पना की गयी है कि बापू ने आधुनिक युग में जिस अहिंसा तत्त्व को प्रश्रय दिया है उसकी जडें चारों युगों में गडी दिखाई पड़ती है। महाबली एवं श्री कृष्ण के बीच की आत्मीयता को अभिव्यक्तिकरते हुए नाटककार ने इस बात को स्थापित किया है । इस नाटक में बिंबित कृष्ण - बली मित्रता असल में वैर भावना पर अहिंसा की विजय को घोषित करती है।

सेवाश्रम: सेवाश्रम नाटक कुरुक्षेत्र जागता है नाटक का ही विकसित रूप है। यह एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक माना गया है। भारत के आज़ाद होने पर राजशासन से च्युत हुआ एक राजा , राजा का मित्र और शुभ कांक्षी बिन्दु, राजा की माता , राजा की पत्नी माया देवी, सेवाश्रम की संचालिका मालती और विदेशी इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। सेवाश्रम नाटक समाज के सतत् विकास तथा भारत के विकास का समर्थन कर राष्ट्रप्रेम का पाठ सिखाता है।

देवयानी: देवयानी एक छोटा सा मनोवैज्ञानिक पौराणिक नाटक है जिसमें प्रेम और पातिव्रत धर्म का चित्रण है। इसमें मुख्य कथा ययाती और देवयानी की है। देवयानी और कच कुमार का प्रसंग प्रासंगिक कथावस्तु के रूप में है।

ययाती का पुत्र पुरु, राजा और देवयानी का पति ययाती,ययाती के गुरु शुक्राचार्य , देवगुरू बृहस्पति का पुत्र कच,असुर गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी आदि इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। देवयानी में नाटककार ने प्रेम के कई स्वरूप हमारे सामने रखे हैं।देवयानी नाटक की संस्कृतनिष्ठ परिमार्जित भाषा में गतिमयता है ,लय है और संगीतात्मकता है। परिणामतः वह पाठक दर्शक के चित्त को अपनी ओर सहज स्वाभाविक रूप में आर्कषित कर लेती है। देवयानी नाटक के द्वारा नाटककार मानव जीवन में त्याग तथा संयम का प्रतिपादन करना तथा प्रेम, करुणा, उदारता और त्याग जैसे महान गुणों का उद्गम बिंदु नारी को ही सिद्ध करना रहा है।

सृष्टि का रहस्य : सृष्टि का रहस्य एक पौराणिक नाटक है। अंगदेश के राजा लोमपाद, ऋष्यशृंग के पिता विभांडक, ऋषिकुमार ऋष्यशृंग , अंगदेश का मंत्री और वृद्धा वारांगना आदि इस नाटक के मुख्य पात्र हैं। पांच दृश्यों वाले इस नाटक में नाटककार आकर्षण को सृष्टि के रहस्य के रूप में हमारे सामने रखता है।

धर्म-अधर्म महाभारत युद्ध के पूर्व और पर की कुछ घटनाओं पर आधारित नाटक है। इस नाटक में धर्म और अधर्म का द्वंद्व बहुत ही सफलता पूर्वक चित्रित किया गया है।धर्म और अधर्म का यह द्वंद्व पांडवों विशेषकर युधिष्ठिर के मन में अंत तक है कि उन्होंने धर्म किया या अधर्म।

डॉ.एन.चंद्रशेखरन नायर की रचनाओं में विविध विषयों को अपनाकर अपनी अप्रतिम और अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है।डॉ.एन चंद्रशेखरन नायर की रचनाएँ मानव- मूल्यों के संरक्षण एवं सर्वधन तथा सामाजिक नव - निर्माण के उत्कट आकांक्षा की रचनाएँ हैं। वे कल्पना के पंखों पर नहीं उडती बल्कि दुनिया की व्यावहारिक और वास्तविक ज़िन्दगी से उनका सीधा संबंध है। आसपास के यथार्थ को गरहाई से अनुभव कर उन्होंने मध्यवर्गीय तनावों, जिजीविषा, अंतर्विरोधों एवं संक्रमण की स्थितियों को संवेदना के व्यापक स्तर पर उभारा है। वर्तमान युग में मानव मूल्यों के विघटन की समस्या गंभीर रूप से व्याप्त है इसके साथ ही नवीन मूल्यों की स्थापना के प्रयत्न में विभिन्न विचारों में संघर्ष चल रहा है।अतः डॉ.एन . चंद्रशेखरन नायर ने आधुनिक उत्पीड़ित मानवता के अंधकारमय जीवन में नव चेतना का संदेश देनेवाली सबल एवं सशक्त नाट्य रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

असिस्टेंट प्रोफसर, हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

नई सदी की कविता के बदलते तेवर

डॉ. श्रीलता पी वी

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य बहुस्वरता का साहित्य है। अनेकानेक परिवेशों से गुज़रकर बहुआयामी आदोलनों को पार करके अब इक्कीसवीं सदी तक पहुँचा है। साहित्यकारों के सामने भी अनेक चुनौतियाँ हैं। साहित्य कभी समाज से दूर नहीं रह सकता, बल्कि वह समाज का सच्चा प्रतिबिम्ब है। अधुनातन पीढ़ी के कवि कर्म के सरोकर केवल स्थानीय नहीं है बल्कि वैश्विक है। उनकी चिंता में एक बेहतर भारत के साथ-साथ दुनिया का स्वप्न और आकांक्षाएँ हैं। उनकी कविता में परिस्थितियों की स्पष्ट झलक है। नयी सदी का काव्य 'समय विविध एवं व्यापक है'। माधव हाड़ा के अनुसार है "साहित्य में बदलाव की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है और इसमें किसी परिवर्तन को सतह पर आने में समय लगता है, लेकिन हालत बदल गए हैं। तकनीकी विकास और संचार क्रांति के कारण परिवर्तन की गति अब पहले से बहुत तेज हो गई है, इसलिए साहित्य में बदलाव बहुत जल्दी जल्दी हो रहे हैं।"[1]

साहित्य की सबसे मानवीय विधा है - कविता। कविता मनुष्य के अंतर्मन की अनुगूँज है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता जगत मुख्य रूप से युग परिवेश और उसके जीवन के साथ जुडे हुए विषमतापूर्ण सवाल है। हमारे समाज में दलित वर्ग, नारी वर्ग, तृतीय लिंगी वर्ग, कृषक वर्ग शुरु से ही शोषण के शिकार है तथा आज भी वह जारी है। समकालीन समाज में सूचनाक्रांति, मीड़िया आदि के प्रभाव के कारण पर्याप्त बदलाव आया है। कुल मिलाकर यह का जा सकता है कि व्यक्ति ने जितना विकास पाया है उतनी ही नयी नयी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। वर्तमान काव्य जगत इन सभी समस्याओं को उसी वास्तविकता के साथ प्रस्तुत कर समाज को सोचने के लिए मज़बूर कर रहा है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है। निश्चय ही नयी सदी की कवयित्रियाँ स्त्री संवेदना के पक्षधर हैं। सीमोन-द-वोउवार ने जो सच सबके सामने रखा कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है। यह सत्य एवं स्त्री अस्तित्व को ढूँढनेवाली समकालीन कवयित्री अनामिका की कविता है 'बेजगह'। भारतीय परिवार में लड़के की तुलना में लड़की को हमेशा कम महत्व दिया जाता है। बेटियों को तरह - तरह के अत्याचार जन्म से ही सहने पडते हैं, इसका सशक्तवर्णन अनामिका ने ऐसा किया है - "राम पाठशाला जा/ राधा खाना पका/राम आ बताशा खा/राधा झाड़ू लगा.../ लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं /उनका कोई घर नहीं होता।"[2]

लड़के को पढ़ने खाने और सोने की सुविधा दी जाती है। लेकिन लडकियों को हवा, धूप, मिट्टी की तरह कहीं भी टिकने नहीं देते। उनका जीवन अभिशप्त है।

वर्तमान दौर में दलित एवं आदिवासी साहित्य ने भी अपना ज्वलंत रूप धारण किया है। एक ओर आदिवासी स्त्री वर्तमान बाज़ारवाद के कारण मुख्यधारा समाज से शोषित है तो दूसरी ओर स्त्री होने के नाते अपने ही समाज में शोषित है आदिवासी स्त्री संघर्षो को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त करनेवाली सशक्त हस्ताक्षर हैं - निर्मला पुतुल।

आदिवासी स्त्री अपने जीवन को स्वतंत्र रूप से नहीं जी पाती थी। घर, प्रेम, संतान आदि के ऊपर स्वप्न देखने से वे प्रायः वंचित हैं। वे हमेशा अस्तित्व को कल्पना में देखती रहती हैं। उसी अस्मिता की तलाश निर्मला पुतुल की कविता अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री कविता में अभिव्यक्त है-"अपनी कल्पना में हर रोज/एक ही समय में स्वयं को/हर बेचैन स्त्री तलाशती है/घर, प्रेम जाति से अलग/अपनी एक ऐसी जमीन/ जो सिर्फ उसकी अपनी हो/एक उन्मुक्त आकाश/जो शब्द से परे हो/एक हाथ/जो हाथ नहीं/उसके होने का आभास हो।"[3]

अशिक्षित आदिवासी लोगों का मूक आवाज ही है कवयित्रि का आक्रोश।

दलित समाज की वास्तविकता की पहचान करानेवाला साहित्य है - दलित साहित्य। भारत की जातिगत उत्पीडन दुनिया भर की सबसे शर्मनाक सामाजिक व्यवस्था है। दलित समाज की पीडाएँ असहनीय एवं अनुभव दग्ध हैं। प्रत्येक दलित कवि अपने जीवन में कभी न कभी किसी न किसी रूप में जातिगत अन्याय, अपमान और उपेक्षा का पात्र बना है। जयप्रकाश कर्दम के अनुसार दलित कविता समाज के सबसे निचले और पिछडे वर्गों तक पहुँची है तथा उसकी अस्मिता से परिचय कराकर उसमें परिवर्तन कामी चेतना का संचार किया है।"[4]

हिन्दी दलित कविता की विकास यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का अलग स्थान ही है। उनके लेखन में जो तीव्रता है, तीखा एवं नंगा सच है वह उनका अपना अनुभव है। उन्होंने अपनी कविताओं में वर्ण और जाति व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए परम्परागत असमानता को तोडने की कोशिश की है। हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था में दलितों ने जो सामाजिक उत्पीड़न झेला है, इसके प्रति खुला प्रतिरोध है उनकी 'जाति' शीर्षक कविता - "स्वीकार्य नहीं मुझे/जाना, मृत्यु के बाद/ तुम्हारे स्वर्ग में/वहाँ भी तुम/ पहचानोगे मुझे/मेरी जाति से ही"[5]

किन्नर शब्द ऐसे समाज के लिए प्रयुक्तहोता है जो लैंगिक रूप से न नर होता है न मादा। यह नाम सुनकर ही सबके मन में एक अजीब भी भावना उभरती है। रामायण, महाभारत काल से लेकर समाज में इस समाज की उपस्थिति है, लेकिन सभ्य समाज ने हमेशा इन्हें तिरस्कृत किया है। अनेक साहित्यकारों ने ऐसा प्रश्न उठाया है कि वे भी इंसान है क्यों इन्हें मानवीय गरिमा नहीं मिली है? मैं भी हमेशा इस प्रकार सोचती हूँ कि आज का तथाकथित सभ्य समाज कब बदलेगा? कब किन्नरों को भी समाज का हिस्सा बनेंगे? कब से उन्हें वास्तविक सम्मान मिलेगा? निवेदिता झा की कविता किन्नर में यह सच्चाई प्राप्त है - "तुम्हारी भी रात होती है/सोने गहने और दुःख को उतारनेवाली रात/सिसकने की रात/अपने घर को याद करके बचपन की रात/दिन में बेफिक्र हर लाल बत्ती पर/या बड़ी गाडियों में बेधड़क चले जा रहे हो।"[6]

शारीरिक रूप से विकलांगों को परिवार अपनाता है और हमारे समाज में उनके लिए तरह तरह की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। लेकिन किन्नरों को परिवार भी नहीं अपनाता। सामाजिक अवहेलना से बचने के लिए परिवार उसे त्याग दिया जाता है।

भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, नव उपनिवेशवाद, उत्तर आधुनिकतावाद आदि की चकाचौंध में अपना अस्तित्व खोजनेवाली नयी सदी स्वयं संकट में पड़ जाती है। अधुनातन हिन्दी कविता के विमर्श में मात्र नारी, दलित, किन्नर नहीं, बल्कि पारिस्थितिक विमर्श भी ज्वलंत है। आज के दौर में मानव ज्यादा से ज्यादा उपलब्धियाँ हासिल कर रहे हैं। मंगल ग्रह तक ज़िन्दगी शुरु करना मनुष्य का लक्ष्य है। लेकिन पारिस्थितिक असंतुलन आज की बहुत बड़ी चुनौती है। समकालीन कविता में इससे उत्पन्न आकुलताएँ देख सकते हैं।

ज्ञानेन्द्रपति की पॉलिथिन कविता में पानी से नयी सदी का युद्ध हम देख सकते है। हमारी सारी नदियाँ या तो सूख रही हैं, या प्रदूषित सारे कूड़े कचरे नदी में फेंक दिए जाते है। बाज़ारीकृत समाज में पर्यावरण सिर्फ फैशन की वस्तु रहा जाता है। शहरों की नालियों और कारखानों की प्रणालियों से प्रवाहित पानी से गंगा दूषित है। इस प्रदूषण को बढ़ाने के लिए अब पॉलिथिन का भी हिस्सा बहुत बड़ा है। गंगा पहले ही दूषित है। इसके साथ भारहीन पॉलिथिन का भी योगदान एक नयी समस्या हो गयी है। वास्तव में पवित्र गंगा की पीडा दुगुनी हो गयी है। "शहरों की नालियों और कारखानों की प्रणालियों की उगल से/करिकाई गंगा/ विषपायी है गंगा/दुखियारी माई है गंगा/उस निर्भर पॉलिथिन के पड़ते ही/भारी हो जाती है उसका जी।"[7]

नयी सदी की एक भयावह समस्या है - विस्थापन का अर्थ है अपना घर या स्थान छोडना। वास्तव में यह विस्थापन दो- चार दिनों के लिए नहीं बल्कि सदा के लिए है। विस्थापित जनता अपना सब कुछ गँव देती हैं। भारत के इतिहास में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ हुए भारत-पाक विभाजन ऐसी त्रासद घटना है, जिसमें लाखों लोग अपनी ज़मीन छोड़कर विस्थापित हो गये। कुमार अंबुज की 'तबादला' शीर्षक कविता विस्थापित लोगों के आत्मसंघर्ष का सीधी साक्षात्कार है। "एक जगह का छूटना सिर्फ जगह का छूटना नहीं होता/जगह के साथ छूटे जाते कुछ दोस्त/ परिचित चेहरे और उनकी आँखों की चमक/छूट जाती है पडोस की बच्ची और उसकी तुतली बातचीत"[8]

विषय की दृष्टि से विस्तार समकालीन कविता की खासियत है। समाज में व्यक्तहर एक समस्या पर लेखनी के स्पर्श से गंभीर बनाने में कविकर्म जागरूक है। बाल-मज़दूरी, बाल-उत्पीडन, यौन शोषण, भिक्षाटन से लेकर कई समस्याओं से आज बालक का जीवन चुनौतिपूर्ण है। काव्य जगत ने समझ लिया है कि बच्चों की स्थिति वैश्वीकृत दुनिया में खतरनाक ही है। कुमार विकल की कविता 'खौफनाक समय के बच्चे' में इसी मुद्दे को सामने रखते है - "कितना खतरनाक समय है/ जब बच्चे इतने खतनाक सवाल पूछते हैं/ कि उनके जवाब देने के लिए/ हम इतना हताश ढ़ंग से/ निरुत्तर हो जाते हैं/ कि उन्हें पीटने लगते हैं/ जब कि हम जानते हैं/ किसी को पीटना/ मारना/ किसी सवाल का जवाब नहीं।"[9]

समाज में आए परिवर्तन के कारण बच्चों की मनोवृत्ति में बदलाव आया है। एक तो यह है कि उनका बचपन गायब हो गया है, दूसरी तरफ बच्चे समाज में निडर होने के बजाय ज्यादा डरे हुए नज़र आते हैं, भयग्रस्त और संशयशील हो गये है।

बाज़ारीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानव मूल्यों में बड़ा परिवर्तन पैदा किया है। रिश्तों की दूरी इस भयावहता का परिणाम है। राजेश जोशी ने अपनी 'रात किसीका घर नहीं' शीर्षक कविता में वृद्धि का मानसिक द्वन्द्व एवं कराह को अभिव्यक्त किया है। अपने बच्चे तथा भरपूर परिवार के होते हुए भी अनाथ की तरह जीने के लिए विवश होती है। समय की इस विडम्बना को राजेश जोशी अपनी पंक्तियों में इस प्रकार स्पष्ट करते हैं-"एक बूढ़ा मुझे अक्सर रास्ते में मिल जाता है/कहता है कि उसके लडकों ने उसे घर से निकाल दिया है/ कि उसने पिछले तीन दिन से कुछ नहीं खाया है।/लडकों के बारे में बताते हुए वह अक्सर रुआँसा हो जाता है/और अपनी फटी हुई कमीज़ को उघाड़कर/मार के निशान दिखाने लगता है।"[10]

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि कविता के कथ्य की बहुरूपता से अल्पसंख्यकों की यातनाएँ, बच्चों की समस्या, पारिस्थितिकी विमर्श जैसी नई नई समस्याएँ शामिल हो रही हैं। नयी सदी की कविताओं में परिवेश की प्रमाणिकता है, परिवर्तन की छटपटाहट हैं। इक्कीसवीं सदी के कवियों ने सामाजिक बोध को समय की माँग के रूप में स्वीकार किया है और उनकी कविताओं में मैं की जगह हम की उपस्थिति ज़्यादा है।

संदर्भ

1. Hindisamay.com
2. साहित्य सागर, काव्य संकलन, राजकमल प्रकाशन, पृ.102
3. www.Kavithakosh.org
4. Hindisamay.com
5. www.Kavithakosh.org
6. www.Kavithakosh.org
7. साहित्य सागर, काव्य संकलन, राजकमल प्रकाशन, पृ.102
8. www.Kavithakosh.org
9. इन्द्रधनुष काव्य संकलन, अमन प्रकाशन, पृ.38
10 www.Kavithakosh.org

असिस्टेन्ट फोफेसर
हिन्दी विभाग
मार थोमा कॉलेज, तिरुवल्ला

सुरेश ऋतुपर्ण की पाँच कविताएँ

(सुरेश ऋतुपर्ण हिंदी के विख्यात, लोकप्रिय और प्रतिष्ठित हिंदी कवि है जो सन् 1971 से 2002 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रशस्त शिक्षा संस्था हिंदू कॉलेज में अध्यापक थे। वे 1988 से 1992 तक ट्रिनीडाड स्थित भारतीय हाई कम्मिशन में राजनयिक के रूप में प्रतिनियुक्त हुए। इसके अलावा सन् 1999 से 2002 तक मॉरीशस स्थित महात्मा गाँधी संस्थान में "जवाहरलाल नेहरु चेयर ऑफ इंडियन स्टडीज़" पर अतिथि आचार्य और सन् 2002 से 2012 तक "तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज़" में प्रोफसर के रूप में भी सेवा की। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ : 'अकेली गौरेया देख', 'मुक्तिबोध की काव्य सृष्टि', 'हिंदी की विश्व यात्रा', 'हिंदी सब संसार', 'जापान की लोक-कथाएँ', 'ये मेरे कामकाजी शब्द', 'जापान के क्षितिज पर रचना का इंद्रधनुष', 'हिरोशिमा की याद एवं अन्य कविताएँ', 'इक्कीस जापानी लोक-कथाएँ', 'जापान में हिंदी शिक्षण की परंपरा', 'पाँच लघु नाटक' आदि। केरल हिंदी प्रचार सभा के साथ उनके मन में गहरा प्रेम और हार्दिक शुभेच्छा है। मेरी आशा है कि केरल जेयोति में प्रकाशित आपकी कविताएँ पाठकों को अत्यंत प्रिय होंगी।)

प्रस्तुति : अधिवक्ता(डॉ)मधु बी, मंत्री

---

(1) समर्पित क्षण अप्रतिम

वह क्षण अप्रतिम
जो तुम्हारे साथ
मैंने जिया
अधरों पर बहता
उष्ण स्नेह जल
बूँद-बूँद पिया
मन में बसा अकेलापन
आँसू बन ढुलक गया।
बाँहों में बँध
आकुल कपोत
सो गए
पलकों में मूँद
खारी सैलाब
खो गए
अलस्सुबह उमग खिला दुःख
पंखुरी-पंखुरी हो झर गया।
वह क्षण अप्रतिम
जो तुम्हारे साथ
मैंने जिया।

(2) शोख चटक रंग की तलाश

एक धुन की तलाश है मुझे,
जो ओठों पर नहीं
शिराओं में मचलती है
लावे सी दहकती है
पिघलने के लिए।
एक आग की तलाश है मुझे
कि मेरा रोम-रोम सीझ उठे,
और मैं तार-तार हो जाऊँ,
कोई मुझे जाली-जाली बुन दे
कि मैं पारदर्शी हो जाऊँ।

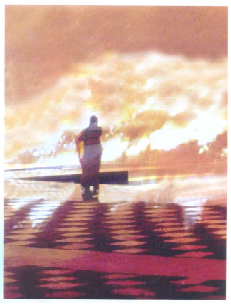

एक खुशबू की तलाश है मुझे
कि भारहीन हो
हवा में तैर सकूँ।
हल्की बारिश की
महीन बौछारों में काँप सकूँ।
गहराती साँझ के सलेटी आसमान पर
चमकना चाहता हूँ कुछ देर
एक शेख़ चटक रंग की तलाश है मुझे।

(3)सपना उमगता है

तुम्हारी आलोकस्नात भावनाओं का संगीत
जब-जब गूँजता है
मन की गहराइयों में जमा
व्यर्थता का अहसास
पिघलता है।
प्रकाशवृत्तों में नहायी
तुम्हारी सुनहली देह का जादू
मेरी यादों के सिर चढ़
बोलता है।

हज़ार-हज़ार सुलगती परछाइयों के बीच
एक खुशबूभरा सपना
उमगता है।
मेरा मन
हर फ़ासला तय करना चाहता है
पर मेरा हर संकल्प
विकल्पों के जंगल में
खो जाता है।

(4) अकेली गौरैया देख

कोई मेरा इंतज़ार करता है
शब्दों को अधरों में छिपाए
जिनका संदर्भ
मुझसे जुड़ा है।
धूल भरी आँधियों के बाद
बरसती रिमझिम बूँदों में
कोई देर तक भीगता है।
और एक मन ऐसा
कि अब तक
किसकिसाहट में लिपटा है।
हथेलियों में स्पर्श की गर्मी दबाए
किसी का तन
रह-रह काँपता है।
कोई मेरा इंतज़ार करता है।

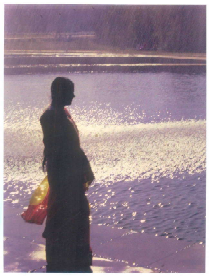

सूनी छत पर अकेली गौरैया देख
किसी की यादों में
उदासी काँधती है।
अमंगल की कल्पना से
सिहर-सिहर कोई चेतना
आशीर्वादों की अल्पना पूरती है।
अनिश्चय के कोहरे में घिरा
किसी का मन
रह-रह डूबता है।
कोई मेरा इंतज़ार करता है।

(5)कल जब मैं नहीं रहूँगा

कल जब मैं नहीं रहूँगा
और मेरे शब्द रहेंगे
तब उनके अर्थ भी बदल जाएँगे
वे मेरी छाया से मुक्त हो चुके होंगे
मेरे राग-द्वेष
मेरी प्रतिबद्धता
और मेरी शरारतों से परे
सीप में मोती की तरह
खुल जायेंगे उनके अर्थ

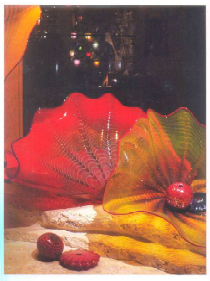

कल जब मैं नहीं रहूँगा तब
मेरे शब्दों को ढ़ाल बना
स्वार्थों की लड़ाई लड़ेंगे लोग
मेरे शब्दों की ओट में
खेलेंगे
लुका छिपी का खेल
तब मैं अपने शब्दों में कहीं नहीं हूँगा
और यही मेरी मुक्ति का क्षण होगा।

भारत-पाक विभाजन के दौर में शरणार्थियों की विभीषिका

डॉ.सिन्धु जी नायर

भारत और पाकिस्तान के विभाजन की समस्या भारतीय उपमहाद्वीप की एक बहुत बड़ी त्रासदी मानी जा सकती है । इस घटना का हम केवल एक राजनीतिक घटना का स्प ही नहीं मान सकते हैं ।इस की वजह से एक देश का भौगोलिक इकाइयों के रूप में विभाजन ही नहीं हुआ, बल्कि बरसों एकसाथ जीनेवाले, एक भाषा बोलने और समझनेवाले, आपसी भाई-चारा रखनेवाले लोगों को एक दूसरे से अलग कर दिया गया है । इस हादसे से यह एक अनहोनी बात हो गई कि अचानक सीमा पार के लोग एक-दूसरे के लिए अजनबी हो वे एक-दूसरे के लिए अजनबी हो जाते हैं । वे एक- दूसरे के लिए दुश्मन बन जाते हैं । एक ही साथ बरसों रहने के बाद भी इस घटना के बाद वे अपने-पराये में अन्तर करने लगते हैं। जिस नीति को अपनाकर अंगेज़ों ने हिन्दू-मुसलमानों को अपने काबू में रखा यानी 'फूट डालो और राज करो', वह नीति अब अमानवीय और भीषण स्प धारण करके सामने आ खड़ी होती है । विभाजन के पूर्व,विभाजन के समय और विभाजन के बाद हिन्दू-मुस्लिम के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष शुरू होता है। इस संघर्ष के परिणामस्वस्प जो दंगे, लूट-मार, आगजली, स्त्रियों का बलात्कार, खुलेआम खून, कत्ल आदि रोंगटे खड़े करनेवाले अमानुषिक कुकृत्य उन लोगों के मन में अपना छाप छोड़ जाती है जिन्होंने इन दुःखों, यंत्रणाओं को झेला है ।दोनों तरफ ऐसी ही घटनाएँ होती रही हैं । दंगे में कभी कभी पूरे के पूरे परिवार का कत्ल कर दिया जाता है। खुलेआम लड़कियों का बलात्कार उनके माता-पिता के सामने किया जाता है और माता-पिता इस दर्दनाक दृश्य को देखकर भी निसहाय खड़े ही रह पाते हैं । नवजात शिशुओं का कत्ल किया जाता है । धन-संपत्ति को लूटा जाता है । इन सब घटनाओं के बाद पाकिस्तान बन जाने के बाद भी देश में दंगे-फसाद पहले के ही समान चलता रहता है। जिन समस्याओं की उत्पत्ति की आशंका से देश का बंटवारा होता है, वह समस्या ही समस्या बन कर सामने बड़ी हो जाती है । सामान्य जनता को इस बंटवारे से कोई लाभ नहीं होता है । असलियत तो यह है कि वे मन ही मन बंटवारे को कबूल नहीं कर पाते है ।

राजनीति के सत्ताधारी को ही इस विभाजन से कोई लाभ होता है। अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु सुविधाभोगी वर्ग सामान्य जनता में धर्म का वास्ता देकर विष घोलने लगते हैं। ये पूरे समाज में साम्प्रदायिक वैमनस्य का आग जलाते रहते हैं । इसमें भी धनिक लोग इस शोषण से बच निकलते हैं। इस मामले में भी गरीब सामान्य जनता ही फंस जाती है। नेतागण किसी भी प्रकार से समाज में अशान्ति की स्थापना करना चाहते हैं । उनके लिए अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु देश में अशान्ति के वातावरण का होना ही उचित है । धार्मिकता के आड़ में नेतागण गुण्डों से समाज में मारपीठ, खून, कत्ल आदि के द्वारा दहशत भरा वातावरण बनाते हैं। नये कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से भारत-पाक विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न विभीषिका का खुला चित्र खींचा है।

इस दौर के कहानीकारों ने इस दर्दनाक स्थिति का भयानक चित्र प्रस्तुत किया है। इनमें से मोहन राकेश, अमरकांत, भीष्म साहनी आदि की कहानियों को ले सकते है।

मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' में भारत के विभाजन की विभीषिका की पृष्ठभूमि पर आधारित मानवीय संबंधों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है। यह कहानी संबंधों के क्रूर हो जाने की कहानी कहती हुई अपनी ज़मीन और वतन से मोह की गहरी पहचान देती है। इस कहानी में विभाजन के साढ़े सात साल बाद भी अपनी ज़मीन से टूटे हुए लोगों की अपनी ज़मीन के प्रति गहरा लगाव दिखाई देता है। उसी लालसा के कारण विभाजन के इतने साल बाद मुसलमानों की एक टोली हॉकी मैच देखने के बहाने लाहौर से अमृतसर आ जाती है। वे सब अमृतसर की गलियों में खोई हुई ममता को पाने की कोशिश करते हैं। बुढा गनी भी इनके साथ आया है। बुढ़ा गनी अपने बेटे चिराग और उसके बीवी-बच्चों की मौत को तो इस कालावधि में स्वीकार कर चुका है। यहाँ आकर उसे ज्ञात होता है कि उसका मकान दंगे में जलकर मलबा बन चुका है। जिसके भरोसे या जिस पर विश्वास कर चिराग अपने पिता के साथ नहीं जाता है, उसीने चिराग और उसके परिवार का कत्ल कर दिया है। रक्खे पहलवान की नज़र चिराग के मकान पर है और वह किसी न किसी तरह उस मकान को हथियाना चाहता है। रक्खा पहलवान कहता है कि चीखता क्यों है, भैण के ...... तुझे में पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले पाकिस्तान।[1] रक्खा पहलवान और उसके साथियों ने जुबेदा, किश्वर और मुलताना को पाकिस्तान दे दी और उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई जाती हैं। रक्खे ने तो इस घर को अपने कब्जे करने के उद्देश्य से कत्ल करके घर को खाली करवाई है परन्तु इसी बीच किसी ने इस घर को आग लगा दी है। वह आज भी उसे अपनी जायदाद समझता है। बूढा गनी रक्खे पहलवान से बड़ी ही आत्मीयता से मिलता और बातें करता है। वह कहता है कि मेरा हाल तो मेरा खुदा जानता है। चिराग वहाँ साथ होता, तो और बात थी।.... मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल । पर वह जिद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊँगा - यह अपनी गली है, यहाँ कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा नहीं है ।भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो, पर बाहर से तो खतरा आ सकता है। मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी।..... रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आयी, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।'[2] गनी की बातें और आत्मीयता भरी व्यवहार देखकर रक्खे को पश्चाताप होता है। गनी बोला जा है कि जो होना है वह हो चुका है, और जो वह खा चुका है वह लौट कर नहीं आ सकता है। वह कहता है कि उसने आकर रक्खे को देखा है तो मानो चिराग को ही देख लिया है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने मानवीय संबंधों की सबसे अधिक भयंकर, क्रूरता का वर्णन किया है कि इससे अधिक क्रूरता और क्या हो सकती है कि रक्ख पहलवान मकान को हथियाने के लिए उसपर अटूट विश्वास करनेवाले चिराग और उसके परिवार का कत्ल कर देता है । रक्खे पहलवान का यह कृत्य कितना बेमानी सिद्ध होने लगता है कि गली का एक आवारा कुत्ता भी रक्खे को उस मलबे का मालिक स्वीकारने को तैयार नहीं है।

मोहन राकेश की कहानी 'क्लेम'[3] में भारत-पाक युद्ध के कारण बरबाद हुए लोगों का चित्रण है। विभाजन की विभीषिका अपना सब कुछ खोये हुए लोगों में क्लेम करनेवालों की मनोवृत्ति का चित्रण है। लोग सरकार से अपनी खोयी संपत्ति की माँग करते हैं। शरणार्थी साधुसिंह की माँग सरकार से नहीं है क्योंकि उसकी लुटी हुई पत्नी और आम का वृक्ष पुनः सरकार वापिस नहीं कर सकती है। विभाजन की विभीषिका का भयंकर रूप मोहन राकेश की कहानी 'कंबल'[4] में देखा जा सकता है। भारत-पाक के विभाजन के पश्चात् एक शरणार्थी परिवार चार महीने से एक कैम्प में आश्रय लिए हुए है। इस परिवार का एकमात्र युवा पुत्र की बलि हो चुकी है। तिल-तिल जोड़कर बनाया गया उनके मकान को छोड़कर ये लोग इस कैम्प में विस्थापितों के समान कठिन दिन भोग रहे हैं । कैम्प में तीन परिवार रहते हैं। कैम्प में एक रात कंबल डालनेवाला आकर इस परिवार की जवान बेटी के युवा शरीर को टटोलकर चला जाता है । उस सर्दी में बाप अकड़कर मर जाता है।'अमृतसर आ गया ' में भीष्म साहनी ने भारतीय विभाजन की विभीषिका का सशक्त चित्रण किया है । इस कहानी में त्रासद परिस्थितियों में व्यक्तियों के मनोविज्ञान का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। इस कहानी में बाबू पठानों का कुछ बिगाड़ नहीं पाता है। इसकी प्रतिक्रिया में वह एक आम, सामान्य व्यक्तिपर अत्याचार करता है।

कमलेश्वर की कहानी 'कितने पाकिस्तान'[5] में विभाजन पूर्व, विभाजन के समय और उसके बाद की साम्प्रदायिक वैमनस्य की परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। इस कहानी में मंगल इसलिए चुनार छोड़कर भागता है कि बन्नो से उसके प्रेम को लेकर साम्प्रदायिक दंगे न हो। लेखक ने इस कहानी में मानवीय रिश्तों के टूटने और बिखरने की समस्या पर प्रकाश डाला है। इस कहानी के माध्यम से कमलेश्वर ने इस विचार पर व्यंग्य किया है कि पाकिस्तान के बनने मात्र से इस देश की सभी समस्याओं का समाधान नहीं होनेवाला है। अमरकांत की कहानी 'मौत का नगर'[6] में साम्प्रदायिक दंगे में एक सामान्य मनुष्य की मजबूरियों और समस्याओं का उल्लेख मिलता है। साम्प्रदायिक दंगे की वजह से पूरे नगर में भय और आतंक का वातावरण बना हुआ है। इलाके में कर्फ्यू लगा है। कई दिनों के बाद कर्फ्यू सबेरे और शाम को चार-चार घण्टे के लिए हटा दिया जाता है। राम और उसके साथी इस भयंकर वातावरण में काम के लिए जाने को मज़बूर है। साम्प्रदायिक सौहार्द अचानक समाप्त हो जाता है। लोग अब एक-दूसरे पर विश्वास नहीं आते। लेखक इस कहानी के द्वारा यह रेखांकित करने का प्रयास करता है कि क्रूर वातावरण में मानवीय व्यवहारों, आचरणों में परिवर्तन आ जाता है। मुसलमान व्यक्तिजो राम के साथ रिक्शे में यात्रा करता है, वह राम को देखकर आतंकित होता है। जब रिक्शा हिन्दू इलाके से गुज़रती है तब वह भयभीत होता है लेकिन मुसलमान के इलाके में अपने आपको पाकर वह निश्चिंत हो जाता है। लेखक ने यहाँ स्थान और परिस्थिति के बदलते ही मनुष्य की मनोदशाओं में क्या परिवर्तन आता है, इसी का चित्रण किया है।

कमलेश्वर की कहानी 'भटके हुए लोग'[7] में सरकार द्वारा पक्के दूकान का कमरा बनाकर देने की योजना बनायी जाती है। पूर्व के दूकानदारों को नोटिस दी जाती है। चुंगी आकर नोटिस पढ़ता है कि उन्हें कुछ दिन मुसीबत उठानी पड़ेगी फिर तो जमकर कारोबार कर सकते हैं। दूकान की

नींव पड़ती है और महीने भर में दस दूकान बनकर तैयार हो जाती हैं। ग्यारहवीं दुकान में आकर काम अटक जाता है क्योंकि ठेकेदारों के बीच झगड़ा हो जाता है। संबंधित दुकानदार चुंगी के मेम्बरों के घर भाग दौड़ करके अपनी-अपनी तरफ से कोशिश करते हैं। दूकानदार अर्जियाँ पेश करते हैं और दस दूकानों को चालू कर दिया जाता है। यह तय कर दिया जाता है कि किराये बोली के मुताबिक ही ली जायेगी। इस कहानी के शरणार्थी हंसराज की दूकान दसवीं है और दूसरी तरफ हंसराज को फीरोज़पुर में सरकार ने कुछ ज़मीन भी दे दी है। दुकानों का अपार्टमेण्ट शुरू किया जाता है लेकिन हंसराज के नाम कोई दुकान नहीं है। यह देखकर वह भड़क उठता है। उच्च अधिकार उसके गुस्से को काबू में करने के लिए आश्वासन देते है कि ग्यारहवीं दूकान अभी से ही कार्ड नाम कर दी गई है । इस बात से आश्वस्त होकर वह फीरोजपुर ज़मीन लेने के लिए चला जाता है। वहाँ पहुँचने पर उसे पता चलता है कि देरी करने की वजह से ज़मीन किसी अफसर ने अपने आदमी के नाम करवा ली है। वहाँ भी उसे आश्वासन मिलता है कि शीघ्र ही दूसरी ज़मीन उसे दे दी जायेगी। शरणार्थी पर होनेवाले अत्याचार का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है कि 'तब से लगभग एक साल गुज़र गया, न ग्यारहवीं दूकान बनती है।'[8] भीष्म साहनी की कहानी 'नीली आँखें में अंधेरे का इंतज़ार करता हुआ ढाढी वाला, दुस्वप्न, कुरूप छाया की तरह उस लडकी की तरफ बढ़ता है क्योंकि वह बेसहारा है। रहने के लिए घर न होने के कारण वह पेड़ के नीचे रात गुज़ारने के लिए मज़बूर है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'पानी और खून में भी शरणार्थियों के दुख की करुण गाथा है। शरणार्थियों के कपड़े उतारे जाते है । इस कहानी के पात्र की अंगूठी भी छीन ली जाती है वह सोचता है कि अपने देश लौटकर भी उसे लूटा जा रहा है। उन शरणार्थियों को पानी तक नहीं दिया जाता है।

नये कहानीकारों ने देश की राजनीतिक स्थिति का नग्न रूप अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है। उन्होंने आम आदमी द्वारा राजनीतिक जीवन की भ्रष्टता और छल-कपट के शिकंजे स्वार्थ-पूर्ति हेतु प्रशासन, पुलिस, औद्योगिक प्रतिष्ठानों आदि में फैलाये गये भ्रष्टाचार का रूप यथार्थ को प्रकट करता है कि संपन्न लोगों की अपेक्षा निर्धन व्यक्तिही इन भ्रष्टाचारों के शिकार होते हैं। भारत- पाक विभाजन के पश्चात् जिन घिनौनी घटनाओं को शरणार्थियों ने झेला है। आज उसकी कल्पना मात्र से ही मनुष्य की आत्मा काँप उठती है । नये कहानीकारों ने अपनी कहानियों में जीवन-संदर्भ को समसामयिकता से जोड़कर यथार्थ को उभारा है।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. मोहन राकेश-मलबे का मालिक-प्रतिनिधि कहानियाँ-पृ-55
2. वही-पृ 58
3. मोहन राकेश-क्लेम-मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ- पृ-108
4. मोहन राकेश-कंबल- मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ- पृ-331
5. कमलेश्वर- कितने पाकिस्तान- भारत विभाजन-हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ- सं, नरेन्द्र मोहन- पृ 33
6. अमरकांत-मौत का नगर प्रतिनिधि कहानियाँ-पृ 30
7. कमलेश्वर-भटके हुए लोग - कस्बे का आदमी- पृ. 39
8. वही- पृ. 50

असोसिएट प्रोफेसर
महाराजास कॉलेज(सरकारी स्वायत्त)
एरणाकुलम, केरल

"मैं पायल" उपन्यास में चित्रित संघर्षमय क्वीर जीवन

रेष्मा के आर

भारतीय समाज में क्वीर कई सालों से अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। क्वीर एक ऐसा वर्ग है, जो समाज और परिवार से पूर्ण रूप से उपेक्षित है। क्वीर एक अंग्रेज़ी शब्द है इसका मतलब अजीब, अलग, असाधारण या विचित्र। इस शब्द का इस्तेमाल सबसे पहले किसी को मजाक उडाने के लिए किया गया था। यहाँ क्वीर शब्द एल.जी.बी.टी. का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ क्वीर एक ऐसा शब्द है कि इसके नीचे सारे अल्पसंख्यक सेक्स और लिंग समाहित है जिनकी जन्म से कोई लैंगिक पहचान न हो। इनमें लेस्बियन(स्त्री समलैंगिक),गे(पुरुष समलैंगिक), उभय लिंगी, तृतीय लिंगी आदि कई लोग आते हैं। क्वीर समाज को मुख्यधारा समाज स्वीकारने को तैयार नहीं है। वे तमाम मानवीय अधिकारों से वंचित हैं। उनको अपनी आवाज़ उठाने का मौका नहीं मिला था। इस समाज में सबसे ज़्यादा संघर्ष का सामना थर्ड जेंडर करते हैं। थर्ड जेंडर एक ऐसा वर्ग है जो जननांग विकलांगता के कारण स्त्रीलिंग या पुल्लिंग की कोटि में न आते हैं। थर्ड जेंडर लोगों के शारीरिक-मानसिक व्यवहारों को समझने के लिए दोनों के बीच के अंतर को समझना होगा। जेंडर सामाजिक, सांस्कृतिक निर्मिति है जबकि सेक्स जैविक संरचना है। संसार में इसके विपरीत कुछ लोग पैदा होते हैं। ऐसे लोगों को हम थर्ड जेंडर, किन्नर, अस्वानी, मंगलमुखी जैसे अनेक नामों से पुकारते हैं। समाज जेंडर के आधार पर जीने के लिए मज़बूर करता है। जो लोग इसकें अंतर्गत नहीं आते अर्थात् जिनके जेंडर और सेक्स अलग-अलग होते हैं उन्हें समाज से बहिष्कृत करते हैं।

भारत के संविधान में हर मनुष्य को समानता से जीने का अधिकार दिया गया है। उच्चतम न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को किन्नर समुदाय को थर्ड जेंडर के रूप में मान्यता दी है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 19 (1) और 21 के अंतर्गत थर्ड जेंडर के अधिकार को स्थापित करने के लिए कई नियम बनाये हैं। अनुच्छेद 14 में कहता है कि समाज में स्त्री और पुरुष के अलावा एक और वर्ग भी है। वह न तो पुरुष है, न तो स्त्री है, उसे नपुंसक, हिजडा, किन्नर, ट्रांसजेंडर आदि नामों से पुकारा जाता है। ऐसे लोगों को हमारे देश के हर क्षेत्रों में जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, नागरिक अधिकारों में इस वर्ग के लोगों को भी स्त्री और पुंरुष की तरह पूर्ण अधिकार है। लिंग उत्पत्ति के आधार पर ट्रांसजेंडर लोगों से विभेद करना कानूनी तौर पर अपराध है। लेकिन आज भी थर्ड जेंडर के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया है। वे लोग समाज और परिवार से पूर्ण रूप से उपेक्षित हैं। उन लोगों को हमारे समाज ये केवल घृणा, दुःख दर्द ही मिलते हैं।आज थर्ड जेंडर समुदाय के लोग आर्थिक, सामाजिक स्थिति के कारण भीख माँगने तथा वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर हैं।

देश में थर्ड जेंडर की दशा बहुत दयनीय है। थर्ड जेंडर के विकास के लिए प्रयत्न करनेवाली लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ने आई.ए.एम.एस. में बताया है - दोष आँखों का नहीं, नजरिया बदलने की ज़रूरत है। जिस दिन यह बदला, सभी परेशानियाँ खत्म हो जायेंगी।

हिन्दी साहित्य में दो हज़ार के बाद थर्ड जेंडर केन्द्रित लेखन कार्य शुरु हुआ है। अनेक साहित्यकारों ने अपने लेखन के द्वारा थर्ड जेंडर को सामान्य मानव की तरह मुख्यधारा में स्थान प्रदान करने के लिए प्रयत्न किया है। हिन्दी उपन्यासों में नीरजा माधव का 'यमदीप', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा', डॉ.

अनुसूइया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ', निर्मला भुराडिया का 'गुलाम मंढी', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं. 203' नाला सोपारा, भगवत अनमेल का जिन्दगी 50-50, लता अग्रवाल का मंगल मुखी, गिरिजा भारती का अस्तित्व, भुवनेश्वर उपाध्याय का 'हाफ मैन', सुभाष अखिल का 'दरमियाना' ओर महेन्द्र भीष्म का 'मैं पायल' आदि प्रमुख रहे हैं।

महेन्द्र भीष्म द्वारा लिखित मैं पायल एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। सन् 2016 में प्रकाशित इस उपन्यास में किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्षों को चित्रित किया गया है। पायल का जन्म लखनउ के एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। हमारे समाज में थर्ड जेंडर बच्चे को कई प्रकार की समस्यायें झेलनी पड़ती हैं। एक थर्ड जेंडर बच्चे को सबसे पहले शारीरिक और मानसिक शोषण अपने परिवार से ही मिलते हैं। सामान्य बच्चे की तरह प्यार ऐसे बच्चे को अपने परिवार से प्राप्त नहीं होता है। प्रस्तुत उपन्यास में पायल (जुगनी) के पिता उसको अपने बच्चे के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है। पिताजी जब कभी शराब पीता है तब यों उसे ताने देता है -"ये जुगनी ! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजडा है। इस तरह पायल 'हिजडा' शब्द सबसे पहले अपने पिता से ही सुनी थी।

प्रस्तुत उपन्यास के कई भागों में एक थर्ड जेंडर के साथ होनेवाले शारीरिक शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पायल के पिता को वह लड़कियों की तरह कपडे पहनना पसंद नहीं था। लेकिन एक दिन उसकी बहनें उसे लड़की के कपडे पहनाकर सजाती है। यह देखकर अचानक आये पिताजी शराब के नशे में उसको बहुत मारते हैं। इस विषय पर पायल कहता है कि, वे मुझे मारते जा रहे थे अपने हाथों से पैरों से और मेरे शरीर से लडकी के सारे कपडे हटाते गये। मारते, गरियाते, घसीटते वह निरंकुश हो उठे थे, गुस्से में अपना आपा खो चुके थे। मुझे बचाने कोई नहीं आ रहा था। यहाँ उपन्यासकार ने एक थर्ड जेंडर की दयनीय अवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

थर्ड जेंडर के जीवन की सबसे प्रमुख समस्या पारिवारिक विस्थापन है। एक थर्ड जेंडर को अपने माँ-बाप, भाई, बहन सब कुछ नष्ट हो जाता है। एक थर्ड जेंडर को अपनाने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता है। इस कारण से वे लोग अपने परिवार और समाज से दूर भाग जाते हैं। इस तरह उपन्यास में पायल भी अपने परिवार से विस्थापित हो जाता है। परिवार से विस्थापित होने का दर्द उसको बहुत सताता है। इस विषय पर वह कहता है कि,

जब परिवार से बिछोह होता है, मिट्टी से विस्थापन होता है। यह दारुण दुख पृथ्वी में मानव मात्र के लिए ही नहीं सारे जीवधारियों के लिए सबसे बडा सन्ताप होता है।

हिजडा एक ऐसा शब्द है थर्ड जेंडर के लिए गाली की तरह प्रयुक्त होता है। समाज के लिए थर्ड जेंडर ये कोई इनसान न होकर सिर्फ उपेक्षा और उपहास का पात्र है। दूसरों की खुशी के लिए नाचने-गानेवाले ये लोग शापित जीवन जीने के लिए मज़बूर है। उपन्यास में पायल समाज और परिवार से मिलनेवाले हास-परिहास के बारे में सोचकर बहुत परेशान होती है। मैं सोचती हूँ कि किन्नर द्वारा दी जानेवाली बधाई भी तो एक विधा है, फिर इसे लोग हास-परिहास व अश्लीलता के चश्मे से क्यों देखते परखते हैं। इसे लोक संस्कृति के अंतर्गत अन्य गायन विधाओं की तरह मान्यता क्यों नहीं मिलती ? समाज पंडित को दक्षिण और धोबी, नाई, कुम्हार, बसारे तक को नेग लोकाचार में, संस्कारों में खुशी-खुशी देता है, तो समाज हम किन्नरों को नेग खुशी-खुशी क्यों नहीं देता ?

प्रस्तुत उपन्यास में किन्नर गुरु पायल के माध्यम से अकेलेपन की समस्या को चित्रित किया गया है। अकेलापन एक ऐसी भावना है जो बहुत तीव्रता से लोगों

को एकांत और खालीपन का अनुभव कराती है। अकेलापन महसूस करने के लिए एक व्यक्ति को अकेले होने की ज़रूरत नहीं है उसे लाखों लोगों के बीच में भी अनुभव किया जा सकता है। पायल अपने परिवार से विस्थापित होते समय वह अकेलेपन से बहुत तडपती है। इस विषय के बारे में वह ऐसा कहता है - जब हम अकेले होते हैं, स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रहे होते हैं - एक अनजाने भय से डर रहे होते हैं, तब अपने ज़्यादा याद आते हैं तब माँ बहुत याद आती है, माँ का आँचल याद आता है, जो छिपा लेता है स्वयं को और दूर कर देता है सारी विपदाएँ चैन मिल जाता है दिल-मन और प्राण को।

उपन्यास में सामान्य मानव को थर्ड जेंडर के प्रति सामाजिक घृणा स्पष्ट करने वाले अनेक अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं - एक दिन पायल अपने साथियों को मिलकर बधाई देने के बाद चाय पीने के लिए दुकान की ओर चल रही थी। उस समय पप्पु नामक आदमी उसके कमर पर हाथ रखता है। इस बुरे व्यवहार से पायल को बहुत गुस्सा आकर पप्पु को झापड मारते हैं। पायल के इस व्यवहार से अपमानित पप्पु क्रोधित होकर बुरी-बुरी गालियाँ बकते हुए पायल को मारते-मारते नंगा करता है। उस समय वहाँ मौजूद किसी भी आदमी ने इस अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठायी थी। इस विषय के बारे में पायल ऐसा कहती है कि, शरीर के घावों के दर्द की मुझे ज़रा भी परवाह नहीं थी। कोफत हो रही थी उन नामर्दों के ऊपर जिनमें से कोई भी मुझे बचाने नहीं आया। हिजडा हम लोगों को कहा जाता है जबकि पुरुष समाज के ये तमाशाई ताली बजानेवाले नामर्द ही 'हिजडा' कहलाने के सच्चे हकदार है। इस तरह उपन्यासकार महेन्द्र भीष्म ने किन्नरों के प्रति सामान्य मानव की संकुचित मानसिकता को चित्रित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में थर्ड जेंडर के साथ होनेवाले यौन शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में जुगनी (पायल) अपने परिवार से विस्थापित होकर वह किसी रेलगाडी में बैठकर चला जाता है। उसे पता भी नहीं था कि रेलगाडी कहाँ जा रही है? ट्रेन में अकेले उनको देखकर एक आदमी उनसे यौन शोषण करने का प्रयास करता है। वह आदमी जुगनी से गंदी हरकतें करने लगता है। लेकिन जुगनी किसी भी प्रकार से उस आदमी से बच जाती है। फिर रेलवे स्टेशन की प्लाटफार्म पर सोते वक्त एक सिपाही उसके साथ गंदी हरकतें करने की कोशिश करता है। वहाँ से भी ईश्वर की कृपा से जुगनी बच जाती है।

थर्ड जेंडर के जीवन की सबसे प्रमुख समस्या अपने अस्तित्व के संबंध में है। एक थर्ड जेंडर के शरीर और मन की भावनाएँ विपरीत होने के कारण समाज उसके अस्तित्व को स्वीकारने को तैयार नहीं होता है। वे लोग अपने अस्तित्व को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अपने जीवन में पराजित होते हैं। उपन्यास में पायल अपने अस्तित्व के बारे में चिंतित होती है। पायल का अस्तित्व स्त्री का है उसका स्त्री मन पुरुष शरीर में कैद है। लेकिन पायल के पिताजी उसके अस्तित्व के विरुद्ध आवाज उठाते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मैं पायल उपन्यासकार महेन्द्र भीष्म की एक सशक्त रचना है। इसमें थर्ड जेंडर के अकेलेपन का दुःख, यौन शोषण की समस्या, गरीबी की समस्या, अस्तित्व की समस्या जैसे अनेक समस्याओं को चित्रित किया गया है। ये समस्याएँ थर्ड जेंडर के यथार्थ जीवन से जुडी हुई समस्याएँ हैं। इस उपन्यास के सुखद अंत के जरिए लेखक महेन्द्र भीष्म ने थर्ड जेंडर को समाज की मुख्यधारा में लाने का सफल प्रयास किया है। इसके साथ भविष्य में थर्ड जेंडर की जिन्दगी में सुधार और प्रगति आने की सूचना भी दी है।

शोध छात्रा
सरकारी आर्ट्स & साइन्स कॉलेज
कोषि़क्कोड

वीरांगना झलकारी बाई उपन्यास में राष्ट्रीय चेतना

सुधा जी

अपने राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम, अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म के प्रति गौख, अपने देश की सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक दशाओं में सुधार के प्रयत्न आदि में राष्ट्रीय चेतना प्रस्फुरित होती है।

साहित्य के अंतर्गत राष्ट्रीय चेतना एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें राष्ट्र-जन को निर्भीक तेजस्वी और पराक्रमी बनाने के साथ-साथ सही दिशा निर्देश देने का सामर्थ्य भी निहित होता है।

बाबु गुलाब राय ने राष्ट्रीय चेतना की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "एक सम्मिलित राजनैतिक धैर्य में बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जनसमुदाय के परस्पर सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम गर्व की भावना को राष्ट्रीय चेतना कहते हैं।"[1]

हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों को इसी राष्ट्रीय चेतना को महत्वपूर्ण विषय के रूप में लिया है। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय जी ने अपने उपन्यास वीरांगना झलकारी बाई में राष्ट्रीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति की है। सवर्ण समाज की महिलाओं के समान दलित समाज की महिलाओं ने भी इतिहास में अपना नाम सुवर्ण अक्षरों में उकेरने हेतु इतिहासकारों को मज़बूर किया। वही वीर महिला है- वीरांगना झलकारी। ऐसी ऐतिहासिक चरित्र को नैमिशराय ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

लेखक ने झलकारी बाई उपन्यास में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का अपनी नायिका के द्वारा चित्रण किया है। उन्होंने अपनी रचना में 1857 के संग्राम में लडे इतिहास में आज भूले बिसरे नेताओं का चित्रण किया है। झलकारी बाई के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। कहा जाता हैं वह रानी लक्ष्मीबाई की प्रिय सहेलियों में से एक है। केवल साथी नहीं समर्पित रूप से झांसी की रक्षा में अंग्रेज़ों का सामना भी किया है। पर आज इतिहास के पन्नों में उनका उल्लेख बहुत कम किया है। झलकारी एक साधारण दलित परिवार की बेटी थी। दलित परिवार हमेशा शिक्षा से दूर ही रहा है। झलकारी का विवाह भी एक गरीब परिवार में हुआ था। देश के प्रति प्रेम, बलिदान आदि के कारण झलकारी का इतिहास में खास स्थान प्राप्त हुआ है। लेकिन वर्षो तक वे महत्वपूर्ण तथ्य अंधेरे में पडे थे। यह एक दुखद बात है। लेकिन बाद में कुछ इतिहासकारों ने इसे उजाले में लाने का प्रयास किया। लेखक कहते हैं "दुखद बात यह है कि जाति विशेष के चश्माधारी इतिहासकारों, साहित्यकारों और पत्रकारों में से किसी ने भी दलित समाज की उस वीरांगना झलकारी बाई की खबर नहीं ली थी। भला ही स्वयं उन दलित और पिछडे समाज के लेखक पत्रकार तथा नाट्यकारों का, जिन्होंने छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर इतिहास के उन महत्वपूर्ण तथ्यों को उजाले में लाने का प्रयास किया।"[2] अपने देश की रक्षा के लिए अंग्रेज़ी से वीरांगना झलकारी ने कडा युद्ध किया। इस कर्म निरत महिला का दास्तान है- वीरांगना झलकारी बाई।

उपन्यास में हम देख सकते हैं कि राष्ट्रीय चेतना उनके खून में बह रही थी। गरीब परिवार के होने से रेत में खेलना, रेत किले बनाने का शौक था। वह शूर वीर थी। मिट्टी से बने किले को बचाने को अपनी जान लगा देती थी। देश की रक्षा अपनी जान से ज्यादा महत्व देकर करती थी। जंगली बाघ का आक्रमण करके अपना प्रदेश और साथियों की रक्षा की। इस घटना से पता चलता है कि उसके रग-रग में वीरता का खून दौड रहा था।

अपनी वीरता से देश की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझती थी वह। उसके लिए राणी लक्ष्मीबाई एक प्रेरणा स्त्रोत बन गयी थी। लेखक के मत में "वह अभिमानी न थी, पर स्वाभिमानी ज़रूर थी। सदैव स्वयं खुश रहती थी और दूसरों की राजी-खुशी देखना चाहती थी।"[3] उसके भीतर देश-भक्ति का दीपक कभी का जल चुका था। वह रानी तो नहीं थी पर आस-पडोस में परिवार की इज्जत की अस्मिता और अभूषण थी।"

वह बचपन से ही वीर, साहसी, ईमानदार और मेहनती होने के कारण सैनिक बनने के लगन थी। झांसी राज्य अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया। उसी समय रानी की उम्र अठारह साल थी। अंग्रेज़ों का लक्ष्य झांसी की गद्दी था। भारत सरकार ने उस समय आज्ञा दिया कि झांसी का राज्य ब्रिटिश राज्य में मिलाया जाता है। लेकिन रानी इनकार कर दिया और कहा कि, "मैं अपनी झांसी नहीं दूँगी।"[4] मुलस्वरूप युद्ध की तैयारी करना शुरु किया। रानी के साथ झलकारी भी थी। दुश्मन को खतम करने के लिए रानी के साथ झलकारी भी तैयार रही थी। युद्ध का डंका बजते हुए सुनकर उसकी भुजाएँ भी रण क्षेत्र में जाने को फडकने लगती थी। तलवारें चलने, गोला फूटने की गूँज होती तो, उसे ऐसा लगता है कोई उसके कानों में कहता है कि, "झलकारी तुझे भी सैनिक बनना है, तुझे देश सेवा करनी है, तुझे अंग्रेजों को अपनी धरती से भगाना है।"[5] ऐसे समय में उसके मन में देश प्रेम की ज्वाला धधकने लगती है। ऐसी विवश परिस्थितियों में दलित समाज के लोगों की बहादुरी और साहस लेखक ने झलकारी बाई द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

युद्ध भूमि में दुखद घटना हुई थी। युद्ध लडते लडते झलकारी की पति की मृत्यु हुई। झलकारी दुखी हुई। वह अपने पति के चरणों पर स्पर्श कर तेज़ी से अंग्रेज़ी सेना पर घायल सिंहनी की तरह टूट पडी। उसके मन में युद्ध में मारे गऐ पति के प्रति दुख नहीं अपितु झाँसी की सुरक्षा की चिंता थी। सवर्ण समाज के लोग अंग्रेज़ों के फौज में आकर मिल गए थे लेकिन झलकारी ने अंग्रेज़ों के मन में यह विश्वास स्थापित किया था कि वह झांसी की रानी थी। वे अपना कर्तव्य स्थापित करने के लिए व्यस्थ थी लेकिन किसी के सामने अपनी इज्जत के लिए समर्पण नहीं किया। वह निडर है और मौत से नहीं डरती। झांसी को अंग्रेज़ सेना से आज़ाद कराना उसका उद्देश्य था। अंग्रेज़ अफसर हयूरोज ने क्रोध से कहा था, "टुम रानी नहीं हाय, झलकारी हाय। हम टुमको गोली मार देगा।"[6] यह सुनकर झलकारी गरजकर कहती है कि, "मार दैय गोली, मोखौं मौत से डर नई लगे।"[7] यहाँ झलकारी की निर्भयता देख सकते हैं।

राष्ट्र चेतना से प्रेरणा पाकर उसने स्वतंत्रता संग्राम में भाग ली और रानी लक्ष्मीबाई की तरह वेष बदलकर युद्ध करने से रानी की रक्षा भी कर पाई। अंग्रेज़ों को उसकी वीरता पर आश्चर्य हुआ और प्रसन्न होकर सैनिकों को उसे छोड देने का आदेश दिया। राष्ट्र के प्रति उस वीरांगना का कर्तव्य, उसकी वीरता को दर्शकों के समने नैमिश राय ने रखा है। झलकारी स्वतंत्रता, समता, बंधुता एवं न्याय के रास्ते पर चलते और दूसरों को चलने की प्रेरणा भी देती हैं। लेकिन झलकारी दलित समाज से थी, इसलिए इतिहासों में उसके कर्तव्य को नहीं दिखाया गया।

निष्कर्ष में हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना एक पावन सरिता की तरह प्रवाहित होती रहती है। परिस्थितियों के कारण इसमें कभी-कभी अवरोध अवश्य उपस्थित होता रहता है, लेकिन इसकी धारा निरंतर गतिशील रही है। दलित उपन्यासकार मोहनदास नैमिशराय जी ने भी अपने उपन्यास के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का उज्ज्वल रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. बाबु गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा सरस्वती प्रकाशन अलहबाद पृ.सं- 91
2. मोहनदास नैमिशराय, वीरांगना झलकारी बाई, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली- मुख पुष्ठ से उद्घृत
3. मोहनदास नैमिशराय, वीरांगना झलकारी बाई, राधाकृष्णा प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ.सं- 33
4. वही पृ.सं -59
5. वही पृ.सं - 65
6. वही पृ.सं - 101
7. वही पृ.सं - 101

शोधार्थी
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम

दलित छात्रों की अस्मिता : 'परिशिष्ट' उपन्यास के संदर्भ में

डॉ. शिवकुमार सी एस हड़पद

दलित अस्मिता आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारणीय विषय है। दलित साहित्य के अंतर्गत दलितों का शोषण, पीड़ा, अस्मिता, जागृति, समाज में दलितों का स्थान, राजनीति में दलितों का अस्तित्व, दलितों का सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह आदि विषयों पर चर्चा की जाती है। इन सारे दलित मुद्दों को साहित्यकार अपने साहित्यिक विधा के द्वारा व्यक्त करता है।

आचार्य गिरिराज किशोरजी ने भी अपना उपन्यास 'परिशिष्ट' में दलितों के मुद्दों को उजागर किया है। 'परिशिष्ट' उपन्यास दलितों के अन्य कृतियों से विशेष माना जा सकता है। क्योंकि यह उपन्यास उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों के साथ हो रहा भेद-भाव, शोषण, संत्रास, संघर्ष, अस्मिता आदि को उजागर करता है। अब तक जितनी भी दलित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं उनमें दलितों का चित्रण केवल परिवार, कस्बे और गाँव तक ही सीमित थी। लेकिन आचार्य गिरिराज किशोरजी ने दलितों का संबंध उच्च शिक्षा संस्थानों से जोड़ा, जिसकी वजह से पाठक शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों की समस्याएँ और उनकी अस्मिता से अवगत हुए।

राजनीति में दलितों की भूमिका : भारतीय राजनीति के शतरंज में दलितों को मुहरे के जैसे प्रयोग में लाया जाता है। सभी राजनीतिक दलों के लिए दलित वर्ग वोट बैंक है। सभी राजनीतिक दल चुनाव के समय दलितों के उद्धार के रूप में अपने आपको बिंबित करते हैं। राजनेता गण दलितों को यह वचन देते हैं कि अगर उनकी पार्टी सत्ता में आती है तो, दलितों की समस्याओं को दूर कर देंगे। लेकिन चुनाव के पश्चात् सभी पार्टियाँ दलितों को किनारा कर देती हैं और अगले चुनाव तक उन्हें दलित वर्ग याद नहीं आता।

राजनीति में जाति का समीकरण भी बहुत काम करता है। चुनाव में जीतनेवाला व्यक्तिजिस जाति से संबंध रखता है उस जाति के लोग अपना निजी काम कराने के लिए उसी राजनेता के पास जाते हैं। उपन्यास में भी हम देखते है कि बावनराम अपना बेटा अनुकूल का आई.आई.टी में दाखिला कराने के लिए सांसद चौधरी साहब से मिलने दिल्ली जाता है। अपने निवास में सांसद चौधरी साहब सलेमपुर चुनाव क्षेत्र से एम.पी. बने राजेन्द्रसिंहजी से बावनराम का परिचय कराते हुए कहता है कि "ये हमारे शुभचिन्तक बावनरामजी है...यह समझ लीजिए कि पिछला चुनाव इन्हीं के बूते जीता गया। आठ सौ सालिड वोट डलवाई थी कुल पाँच सौ से हार जीत हुई....हमारे क्षेत्र में इतना तगड़ा इलेक्शन कभी नहीं हुआ। ये अपने जाति में बेताज बादशाह है। ऐसे लोग अब नहीं होते.....खासतौर से इन जातियों में।" (1)

इसी तरह सांसद चौधरी साहब से मिलने आए एक सवर्ण कहता है कि "बाहर जो टिका है ना जात का सरकारी पंडत है। पास के गाँव का ही है। अब देखना सब कुछ करा के जाएगा। हम सोचत है इसी सरकारी महोदय पर हम भी जाकर जल चढ़ा दे।"(2) एक आदमी अपने जमीन के मामले के संबंध में चौधरी साहब से कहता है कि "हमारी चोटे कोई नहीं देख रहा है...सब लोग इन हरिजनों के हिमायती बने घूम रहे हैं। चढ़ा दीजिए हम लोगों को सूली पर। बराबरी के नाम पर यह हरगिज नहीं हो सकता कि कोई कम बराबर हो और कोई ज्यादा।"(3) एक और सवर्ण व्यक्ति चौधरी साहब से शिकायत करता है कि "आप ही बताए मैं क्या करूँ?आप लोगों ने जब भी जितना माँगा मैंने कभी इनकार नहीं किया...इलेक्शन हो, फंक्शन हो, प्रधानमंत्री फंड हो....कुछ भी क्यों न हो मेरे भाई भतीजे, लड़के जेल में पड़े हैं। जमानत तक नहीं होने दे रहे। तीन सौ सात का मुकदमा कायम करने की जुस्ताजू है। क्या हम लोग यही दिन देखने के लिए आपकी पार्टी के साथ है?"(4)

इन उदाहरणों से हमें ज्ञात होता है कि राजनेता, चाहे दलित हो या सवर्ण सबको अपने राजनीतिक फायदे के लिए उपयोग करते हैं और समय आने पर जाति-जाति के बीच संघर्ष कराके सत्ता हासिल करते हैं।

मानसिक शोषण: दलित साहित्य का मुख्य केन्द्रबिन्दु दलित शोषण है। दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं में

दलित शोषण के नाना रूपों और संदर्भों को चित्रित किया है। इससे यह लाभ होता है कि पाठक दलितों की पीडा और दयनीय स्थिति से अवगत होते हैं और शोषण के कारणों पर विचार करते हैं। मेरे विचार में दलित शोषण का अर्थ केवल शारीरिक शोषण नहीं बल्कि मानसिक शोषण भी है। उपन्यास में अनेक ऐसे संदर्भों का उल्लेख हुआ है, जहाँ दलित छात्रों का मानसिक शोषण होता है।

सांसद के घर पर जब बावनराम खाली हुई खाट की तरफ जाता है तो वहाँ के एक सवर्ण कहता है कि "अच्छा बावनराम चौधरी....इस खाट पर आपका बिस्तर जम गया। तके बैठे थे, खाली होते ही लपक ली। भैया, तुम लोगो मौका नहीं चूकते।"(5)

एक संदर्भ में बावनराम और सवर्णों के बीच वाद-विवाद हो जाता है। जब अनुकूल बाथरूम से नहाकर बाहर आता है तो एक सवर्ण कहता है कि "देखा, सारा बाथरूम गीला पड़ा है...इन साले भगतों की वजह से नाक में दम है। लगता है सरउ रात-भर नहाए है"(6) अन्य एक व्यक्ति कहता है कि "यहाँ तो जिन्दगी इन लोगों की वजह से दूभर हो गयी। धरम-करम को रख आएँ। कपड़े-लत्ते थोड़े ही है कि नदी पार करते हुए सिर पर धर लिए...और करली पार। धरम तो सरीर भी है और आत्मा भी। पर ये तो ससुरे, मास और नकरन को अलग करने पर तुले है।"(7)

बावनराम संसद भवन पहुँचकर शिक्षा मंत्रालय में काम करनेवाले कृष्णाजी से मिलने के लिए जाता है, तो वहाँ पर काउन्टर में बैठा हुआ आदमी की ज़हरीली बातें सुननी पड़ती हैं, यही तो देश के चौपट होने की अलामते है एस.सी है, एम.पी. की चिट्ठी ले आए... ! आई.आई.टी. में दाखला चाहिए। वोट चाहिए इसलिए दाखला भी दिलाना पड़ेगा। आई.आई.टी जैसी संस्था को तो छोड़ दो...बाबा ! अभी हमारे यहाँ प्रोमोशन हुए थे। अच्छे-अच्छे सीनियर और नोटिंग-ड्राफ्टिंग के हकीम रह गए। एस.सी होने के कारण नाख्वान्दा आगे निकल गए। तबीयत में आग लग गई। मारे भी और रोवन न दे। अब सबसे पहले सेक्सन ऑफिसर होकर सिर पर बैठ जाएँगे..... ! खड़े हुए लोगों की तरफ देखकर बोला, "भई कोई एस.सी. हो तो बुरा मत मानना। हकीकत बयान कर रहा हूँ। आग अंदर लगी हो तो धुआँ बाहर निकलता ही है।"(8)

आई.आई.टी. जैसी उच्च शिक्षा संस्थानों में भी रामउजागर और अनुकूल जैसे अनेक दलित छात्रों पर मानसिक शोषण होता है। मोहन की आत्महत्या को देखकर रामउजागर अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। इसीलिए वह अनुकूल से कहता है कि भाग जाओ, जल्दी भाग जाओ....ये तुम्हें भी बंद करके मार डालेंगे। ये सब कुत्तामार दस्ते के सदस्य हैं....इन सबकी बाँहों में एक-एक रस्सी छिपी है। मौका मिलते ही गले में डालकर खींच लेते हैं, आदमी लटक जाता है....मोहन मेरा दोस्त था। उसने मुझे कान में बताया था।"(9) आगे खन्ना और उनके साथी अनुकूल और अन्य दलित छात्रों को संस्थान को छोड़कर जाने के लिए हमेशा धमकाते रहते हैं। साथ ही मौका देखकर खन्ना और उसके साथी अनुकूल की टाँगे तोड़ देते हैं। जिसकी वजह से उसे कुछ दिनों के लिए अस्पताल में भर्ती होना पड़ता है।

इस प्रकार उपन्यास में अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं, जहाँ दलित छात्रों को शूल जैसी चुभनेवाली बातें सहनी पड़ती हैं।

दलितों में कुंठा की भावना : उपन्यास में लेखक अनेक ऐसे संदर्भों का चित्रण किया है जहाँ दलित अपनी शोचनीय स्थिति से बाहर ही नहीं आना चाहते हैं। उनमें दलित होने की कुंठा की भावना घर कर गयी है। अनुकूल को आई.आई.टी में इंजिनीयरिंग करना पसंद नहीं था। बावनराम के जबरदस्ती के कारण ही वह बेमन होकर आई.आई.टी में पढ़ने के लिए जाता है। वह सोचता है कि मुझे नहीं लगता, इंजीनियरिंग में दाखला पा जाना ज़िन्दगी में बुनियादी परिवर्तन ला देना। ये सब जाते हैं। अनपढ़ से अनपढ़ आदमी अपनी ज़िन्दगी को अपने जन्म से जोड़कर देखता है। बहनें बहनोई, माँ, सब।

आई.आई.टी संस्था में जब अनुकूल अपने कमरे में एक वाल्मीकी लड़के को अपना साथी बनाता है तो, उसकी माँ सहन नहीं कर पाती। वह कहती है कि क्या इसी दिन के लिए अनुकूल को पाल-पोसकर बड़ा किया था कि वह अगत बिगाड़ दे? जनम-करम में थूक दिया। इन्हें ही लग रही थी इंजिनियरी पढाउँ....इंजिनियरी पढाउँ....लो पढ़ा लो इंजीनियरी। न जात का रहा न धरम का। इंजीनियर ही इंजीनियर रह जाएगा। बड़ों की तरफ से तो उसने अपना

मूँड ही छिलवा लिया। मैं बताए देती हूँ कि बिना सुद्धि के उसे घर में नही घुसने दूँगी चाहे प्राण ही क्यों न चले जाएँ।" (10)

संस्था में एक सवर्ण लड़का नीलम्मा को समझाता है कि "इनके दुश्मन हम नहीं....ये खुद, इनके ट्रेट्स, इनके अंदर की जन्मजात जड़ता, हीनता की ग्रन्थियाँ ही इन्हें खा जाती हैं।"(11) अनुकूल की माँ को जब नीलम्मा की बात पता चलती है तो, वह कहती है कि यह पहले क्यों नहीं सोचा था कि वहाँ लौंडे-लौडिये साथ पढ़ते हैं? मुझे पता होता तो मैं मरती मर जाती पर अपने अनुकूल को न जाने देती। कुलच्छनी कहीं की...! लौंडे पर डोरे डालती है। जरूर कोई जादूगरनी होगी....मेरे अनुकूल को मक्खी बनाकर दीवार पर चिपका देगी। तुमने मेरे लाल को वहाँ भेजकर किस जन्म का बदला लिया जी? उस बेचारे को इन कम्बख्त जादूगरनियों के चक्कर में फँसा डाला।

अनुकूल की माँ की बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी उँची जाती में पैदा हुई है। उसके बेटे को निचली जाति की लड़की फँसा रही है। इस संदर्भ में मुझे हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का वह कथन याद आता है जहाँ वे कहते है कि "हमारे देश में निचली से निचली समझी जानेवाली जाति भी अपने से निचली जाति को ढूँढ लेती है। दलितों में यह मानसिकता है कि वे दलित के रूप में जीना नहीं चाहते। अनुकूल की माँ इसका अच्छा उदाहरण है। उपन्यास में रामउजागर अपना मानसिक संतुलन खो देता है। वह मानसिक बीमारी का शिकार होकर तनाव, कुंठा और एकाकीपन से बाहर ही नहीं आ पाता और अंत में आत्महत्या कर लेता है। रामउजागर के पिता सुबरन चौधरी भी इसी कुंठा का शिकार होकर कहते है कि "मैं बहुत तेज़ दौड़ा....पैरों-तले की जमीन नहीं जाँची। पैरों-तले की जमीन पोली हो तो भला कोई दौडता है? धँसना तो था ही, सो धँस गया।(12)

रामउजागर और अनुकूल दोनों को लगता है कि वे आई.आई.टी जैसे शिक्षा संस्थान में प्रवेश पिछले दरवाजे से किया है। अर्थात् अगर दलित छात्र प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करके अन्य छात्रों से बराबरी करके आये होते तो उन्हें शिक्षा संस्थान में अपमान न सहना पढ़ता। इसके संबंध में अनुकूल कहता है कि "ये लोग ठीक कहते है कि अगर हम लोग कम्पटीशन से आए होते तो हमारी स्थिति इतनी गई गुजरी न हुई होती।"(13) रामउजागर को भी यही लगता है कि "सबसे बड़ी गलती तब होती है जब इतर कारणों से दी गई छूटों को कोई व्यक्ति या समाज दाँतों से पकड़ने लगता है। अगर हमने बराबरी के स्तर पर संघर्ष किया होता तो आत्मसम्मान के साथ रहने की ज्यादा गुंजायश हुई होती।"(14)

दलित जागृति : उपन्यास में दलित जागृति को भी पर्याप्त अवसर मिला है। उपन्यास में बावनराम ऐसा पात्र है जिसके द्वारा लेखक दलित चेतना को उजागर करते है। बावनराम द्वारा कहीं गयी सारी बातें दलित जागृति की ओर इशारा करती हैं। बावनराम की बातों का कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

बावनराम, परिवार और रिश्तेदारों के विरोध करने पर भी अनुकूल को आई.आई.टी में इंजिनियरी करने के लिए भेजता है। वह चाहता है कि बेटा इंजिनीयर बनकर जीवन में आगे आये और अपने साथ साथ अपने लोगों का भी उद्धार करें। वह नहीं चाहता कि उसका बेटा भी उसके जैसा निकृष्ट और हीन जीवन गुज़ारे। वह अनुकूल से कहता है कि - मैं चाहता हूँ कि तुम एक दिन अपनी कार से आकर घर के सामने उतरो...जिससे लोग यह तो देखें कि हम लोगों की सन्तान भी कारों और मोटरों में बैठकर चलने के लिए पैदा होती है। हम छोटे हैं, क्योंकि हम हिम्मत हारकर, यह मान लेते हैं कि हम छोटे हैं और छोटे ही रहेंगे। अपने जमाने में मैंने गाँव का पुश्तैनी काम त्यागर फैक्टरी की नौकरी यही बते के लिए की थी कि हम लोग गाँव के मरे हुए ढोरों की खिदमत के लिए ही नहीं बने, हम फैक्टरियों में भी काम कर सकते हैं.... आत्मज्ञान वह पारस पथरी है जो बिना भेदभाव के लोहे को सोना करती है। आत्मज्ञान बाँभन को भी सोना करता है और नीच को भी। इंसान खुद ही अपने आपको देखने की दृष्टि दूसरों को देता है। तुम्हें अपने बारे में स्वयं निर्णय लेना है कि और लोग तुम्हें कैसे देखें। सभी लोग अपने-अपने गढों में बैठे हैं। दूसरे तो हमसे भी ज्यादा बड़े गड्ढों में हैं। बस फर्क इतना ही है कि वे गड्ढे में रहकर भी अपने को पहाड़ की चोटी पर खड़ा महसूस करते हैं और यह मानकर हम पर थूकते है कि उनका थूक हमारे उपर ही पड़ रहा है। यह नहीं समझते कि कुछ तो उन

पर भी पड़ता होगा। छींटे ही सही! पर गड्ढे से हमें ही निकलना होगा। छोटापन हमें खाए जा रहा है। उन्हें नहीं।"[15]

सांसद चौधरी के घर पर सवर्ण लोग बावनराम और अनुकूल के द्वारा बाथरूम का उपयोग करने पर गुस्सा दिखाते है तो बावनराम क्रोध में आकर कहता है कि "साफ होने से मतलब? आपके बाथरूम से निकलने के बाद अगर हम यही सवाल पूछें तो आप हमें जिन्दा जला डालेंगे। हमारी बेइज्जती नहीं होती? मैल तो सबके शरीर से एक-सा ही निकलता है....ऐसा नहीं कि आप उँची जात के हैं तो आपके शरीर से कुछ भिन्न प्रकार का निकलता हो। आप सोते हुए कुछ अलग तरह साँस लेते हों.... ! माफ कीजिए, आप भी यहाँ झोली लेकर आए और हम भी। भिखारी-भिखारी में ज्यादा फर्क नहीं होता। हो सकता है आपकी झोली रेशम की हो और हमारी टाट की। पर जो मिलता है वह भीख ही होती है।"[16]

बावनराम नीलम्मा से कहता है कि "आप लोगों को श्रेष्ठ मानना.....फिर ताव में बोले, आप लोगों के नीच कामों को भी उँचा दर्जा देना हम लोगों के समाज की मजबूरी है। हम लोग इस स्थिति में नहीं कि आर्थिक स्तर पर आप साहबान का मुकाबला कर सके। यह तभी हो सकेगा जब हमारे बच्चे धन और पद के ख्याल से आप लोगों की बराबरी पर आ जाएँगे। लेकिन आप लोग बुद्धिमान लोग है, जैसे ही कोई इस रास्ते पर कदम रखने की कोशिश करता है आप लोगों को तत्काल पता चल जाता है....आप लोग सक्रिय हो जाते हैं।"[17]

उपन्यास में नीलम्मा भी दलित जागृति का प्रतिनिधित्व करती है। नीलम्मा एक आधुनिक और वैज्ञानिक सोच रखनेवाली लड़की है। वह रामउजागर की माँ को समझाती है कि "ऐसा मत सोचिए। जात-पात कुछ नहीं होती। अगर मैं आपके घर पैदा हो जाती और रामउजागर हमारे घर पैदा हो जाता तो हम लोग उसी को अपनी जात समझने लगते। यह तो जन्म का बंधन है जो अन्ततः जीवन-भर के लिए हमारी नियति हो जाती है। जन्म के समय न कि जात लेकर पैदा होता है और न नाम। यहीं आकर मिलते हैं। हम उसी को अपना समझने लगते हैं..... नाम और जात तो देह के हैं....जब तक देह तब तक नाम और जात। देह छूटी....ना किसी का नाम और ना किसी की जात।"[18]

रामउजागर आत्महत्या करने से पहले अपने मृत्यु पत्र में हम सबसे विचारणीय एक सवाल छोड़ जाता है। वह प्रश्न करता है कि "जब यह प्रकृति, जिससे हम सबकुछ पाते हैं, घृणामुक्त है तो, मनुष्य मुक्त क्यों नहीं? हम जब कहीं कुछ नहीं पाते तो प्रकृति के शरण जाते हैं। वह हमें सबकुछ देती है.........मुझे आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिला तो कोई बात नहीं। मैं एक बड़े अवसर की खोज में अपने यान को प्रज्वलित कर चुका हूँ। जो लोग यहाँ के अवसर की लौ लगाए हैं उन्हें वे अवसर मोहेइया कराकर आप बड़े होंगे। बहुत बड़े।"[19]

उपन्यास में ऐसे अनेक अवसर आते हैं। जहाँ दलित चेतना से जुड़ी बातें कहीं गयी हैं। उन सभी बातों का लक्ष्य केवल दलित जागृति है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों के प्रति शिक्षकों की मानसिकता : उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों के प्रति शिक्षकों का व्यवहार कैसा होता है? यह भी विचारणीय है। उपन्यास में हम देखते हैं कि आई.आई.टी जैसे उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षक दलित छात्रों के पक्ष में कम ही दिखाई देते हैं। यह मानसिकता दृढ़ हो गयी है कि दलित छात्र ऐसे उच्च स्थरीय संस्थानों के लिए अयोग्य हैं। इसका अनेक उदाहरण उपन्यास में मिलते हैं।

संस्था के डीन महोदय नीलम्मा से कहता है कि "इतनी खूबसूरत और महान संस्था इन्हीं लोगों के कारण रसातल को जा रही है। सारे शैक्षिक स्तरों को इन्हीं के कारण मिट्टी में मिलाया जा रहा है। यह तो यहाँ के योग्य और समर्पित अध्यापकों तथा तेज छात्रों का बूता है कि साख को गिरने नहीं दिया जा रहा। वरना तो ये लोग इसे चाट गए होते।"[20]

अनुकूल बुद्धिजीवियों के संबंध में कहता है कि "आजकल पढ़े-लिखे बुद्धिजीवि आर्थिक रूप से अपाहिज लोगों को अपनी बैसाखी बनाकर अपनी प्रगतिशीलता की यात्रा संपन्न करते हैं। टूटे तो बैसाखियाँ, खड़े हो तो वो......" [21]

रामउजागर के संबंध में संस्थान के कमिटी की मीटिंग समाप्त होने के बाद डिप्टी डायरेक्टर ने कमेटी के चेयरमैन प्रोफेसर अठावले से कहता है कि "अरे नहीं प्रोफेसर, आप नहीं जानते, ये लोग हम लोगों के लिए

कितना बड़ा सिर-दर्द है.....वे लोग भी अपने में एक ताकत है।"[22]

अंत में जब रामउजागर आत्महत्या करता है तो उसकी जाँच के लिए जो कमेटी बिटाई जाती है, उस जाँच रिपोर्ट में यह लिखा जाता है कि उक्त आत्महत्या मेहनत न कर पाने के कारण अपेक्षित परीक्षाफल की आशा समाप्त हो जाने के फलस्वरूप की गई । यह भी बताया गया कि 'इस तरह के संस्थानों में उसी स्तर के छात्रों को स्थान मिलना चाहिए जो उसकी गरिमा के अनुरूप हो।'

पूरे संस्थान में अकेले प्रोफेसर मलकानी ही थे जो दलित छात्रों के पक्ष में थे। लेकिन ऐसे शिक्षक विरल ही होते हैं। इन सभी संदर्भों में हमने देखा कि किस तरह से शिक्षक भी दलित छात्रों से दूरी बनाकर रखते हैं और उनकी उपस्थिति उन्हें कितनी अकरती है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों की अस्मिता : भारत सरकार, दलित छात्रों के कल्याण के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों में आरक्षण की व्यवस्था की है। लेकिन जब दलित छात्र इन संस्थानों में दाखिला लेते हैं तो, वहाँ वे अपने अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं। उपन्यास में भी अनुकूल अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए आई.आई.टी में दाखिला तो लेता है लेकिन, अपनी पहचान और अस्मिता की रक्षा नहीं कर पाता। खन्ना और उसके साथी दलित छात्रों की अस्मिता के लिए खतरा बनते हैं। अनुकूल दलित छात्रों के हित में सोचता है और अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिए दलित छात्रों को एकत्रित करता है। लेकिन संस्था का दलित विरोध वातावरण उसे रोकता है।

रामउजागर भी अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करता है। लेकिन उसमें सफल नहीं हो पाता। इसी संघर्ष में वह अपना मानसिक संतुल खो बैठता है और अंत में मानसिक तनाव के कारण आत्महत्या करता है। संस्था के प्रशासन भी दलित विरोधी था। वह दलितों की अस्मिता को नष्ट करने में अपनी भूमिका भी निभाता है। दलित अस्मिता के संबंध में रामउजागर का कहा गया यह वाक्य बहुत ही सटीक लगता है "कभी कभी जब मनुष्य के अपने अंदर के सोते सूखने लगते हैं तो वह अपनी तरलता खोता जाता है। सूखा उगने देना बंद कर देता है। बल्कि उगा हुआ भी सूखने लगता है।"[23] ऐसा लगता है कि दलितों के अंदर की अस्मिता भी सोते की तरह सूखने लगी है जिसे फिर से पानी से सींचने की आवश्यकता है।

आज भी हमारे देश में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जिन्हें आरक्षण का लाभ नहीं मिल रहा है। इसीलिए जिन लोगों ने आरक्षण का लाभ उठाया हैं उन्हें आरक्षण से बाहर रखकर, उन लोगों को आरक्षण देने की व्यवस्था होनी चाहिए जो आरक्षण से वंचित है। जो दलित आरक्षण का लाभ उठाकर जीवन में तरक्की करते हैं, उनकी जिम्मेदारी बनती है कि अपने साथ साथ अपने लोगों को भी ऊपर उठाने का प्रयास करें और साथ ही अपना आरक्षण उन दलितों के लिए त्याग करें जो आरक्षण से वंचित हैं। लेकिन अक्सर देखा जाता है कि एक शिक्षित दलित अथवा अधिकारी अपने आप को दलित कहने से हिचकिचाता है और अपने ही लोगों से दूरियाँ बनाए रखता है। दलितों को इस मानसिकता को बदलनी चाहिए।

इस प्रकार गिरिराज किशोर जी ने उपन्यास में दलित जीवन के उन सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया हैं जो आधुनिक युग में दलित अस्मिता से जुड़े हैं। दलित छात्रों का जीवन संघर्ष, उनकी पीड़ा और मानसिकता को तर्कशील बातों के द्वारा पाठकों तक पहुँचाया है। यह उपन्यास दलित छोत्रों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत अवश्य बना है। साथ ही आधुनिक समाज को आत्मचिन्तन करने के लिए प्रेरित भी करता है।

संदर्भ :

1 परिशिष्ट आचार्य गिरिराज किशोर, पृ.44,
राजकमल प्रकाशन 2011
2 वहीं पृ.42
3 वहीं पृ.52
4 वहीं पृ.52
5 वहीं पृ.67
6 वहीं पृ.78
7 वहीं पृ.78
8 वहीं पृ.86-87
9 वहीं पृ.163
10 वहीं पृ.117
11 वहीं पृ.182
12 वहीं पृ.258
13 वहीं पृ.281
14 वहीं पृ.280
15 वहीं पृ.18-19
16 वहीं पृ.79
17 वहीं पृ.204
18 वहीं पृ.237
19 वहीं पृ.325
20 वहीं पृ.263
21 वहीं पृ.288
22 वहीं पृ.306
23 वहीं पृ.296

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बीजीएस महाविद्यालय,
मैसूर-570 023, मोबाइल - 7349168677
ई-मेल - shivkumarcs1985@gmail.com

समकालीन हिंदी कविता में भूमंडलीकरण

डॉ.सुरेंद्र कुमार

अपने युग का साहित्य सदैव समकालीन ही होता है परन्तु किसी कालखण्ड के लिए समकालीन शब्द का रूढ़ हो जाना आश्चर्यजनक है। इस सच्चाई को स्वीकारना ही पड़ेगा कि साठोत्तरी कविता के लिए 'समकालीन कविता' की संज्ञा सर्वप्रचलित व सर्वमान्य हो चुकी है। हमें इसे नकारने या विवाद का विषय बनाने की अपेक्षा इसके कारणों व अर्थों पर चर्चा करनी चाहिए। साठ के दशक के बाद पूरे विश्व में सूचना प्रौद्योगिकी और नये-नये आविष्कारों ने पूरे विश्व का स्वरूप बदल दिया। भारत और भारत के हिन्दी कवि इस बदलाव से कैसे अछूते रह सकते थे। एक ओर ज्ञान-विज्ञान के नये-नये द्वार खुल रहे थे तो दूसरी ओर स्वतंत्रता संग्राम में देखे गये सुनहरे सपने ध्वस्त हो रहे थे। इसी पृष्ठभूमि पर हिन्दी कविता एक नया स्वरूप धारण कर रही थी। इस पृष्ठभूमि की ओर संकेत करते हुए जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं- "इधर के कवि उस 'मैनरिज्म' से मुक्ति पाते जा रहे हैं जो कि पिछले वर्षों में प्रकाशित तमाम कई कविताओं में दिखाई देती है। अनुभूति की गहनता और बौद्धिक प्रक्रिया के संभावित आयामों को व्यक्तन करने के कारण दशक के कई कवि शिल्प प्रणालियों में बहकर दूर जा पड़े हैं। सहज और आधुनिकता के विभिन्न रूपों को परिभाषित करते हुए कविताएँ एक साथ प्रकाशित की जाएँ ताकि नये काव्य की संभावनाओं को परिलक्षित किया जा सके। उसके अभिनव काव्य रूपों के विकासशील तत्त्वों को पहचाना जा सके।"[1] कहना न होगा कि यहाँ चतुर्वेदी जी जिन नई संभावनाओं की तलाश कर रहे थे, वे समकालीन कविता के रूप में फलित हुई।

समकालीन कविता अनेक आक्षेपों और आलोचनाओं के दौर से गुजरी है। इसके मूलाधार को स्पष्ट करते हुए बाबू जोसेफ लिखते हैं- "समकालीन शब्द अंग्रेजी के कंटेम्परेरी शब्द के समानार्थी शब्द के रूप में हिन्दी में प्रयुक्तहुआ है। साहित्य के क्षेत्र में समकालीन शब्द का प्रयोग पहले सीमित अर्थ में समसामयिक तुलना से होता था। बाद में समकालीन शब्द का प्रयोग वर्तमान के लिए किया जाने लगा अर्थात् जो वर्तमान संदर्भ में मौजूद और सार्थक होता है, वह समकालीन है। समकालीनता मनुष्य को उसके संपूर्ण परिवेश के साथ पहचानती है, इसलिए समकालीन कवि अपने समय की विसंगति, विडम्बना और विद्रूपता को पहचानकर उनका यथार्थ चित्रण करते हैं।"[2] रघुवीर सहाय इसे और अधिक व्यापक अर्थ में मानते हैं- मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। पुनः मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य की अनंत संभावनाओं का सार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न आये, वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है, वही समकालीनता का धर्म निर्वाह करता है। सहाय जी और अधिक स्पष्टता की ओर बढ़ते हुए कहते हैं- "कविता में समकालीन की पहचान वही नहीं हो सकती जो उदाहरण के लिए राजनीति में हो सकती है। सही पहचान के लिए हमें कवि की भाषा और भाव के परस्पर संबंध को जानना चाहिए।"[3] समकालीनता कविता की मुख्य प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हुए डॉ विश्वम्भर उपाध्याय लिखते हैं- "समकालीन कविता में जो हो रहा है (बिकमिंग) उसका सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमानकाल का बोध हो सकता है क्योंकि इसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में ठहरे हुए क्षण या क्षणांश के रूप में नहीं है। यह काल क्षण की कविता नहीं काल प्रवाह के आघात और विस्फोट की कविता है।"[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि समकालीन कविता में कल्पना की उड़ान नहीं अपितु यथार्थ का ठोस धरातल है। समकालीन कवि अपने समय का द्रष्टा व आलोचक है। आज के समय की विसंगतियों, कुंठाओं, इच्छाओं, अपेक्षाओं और अभ्यर्थनाओं से समकालीन कविता भरी पड़ी है। समकालीन कवि विश्व में हो रहे तीव्र परिवर्तनों से भी भिज्ञ है। वह इन तीव्र परिवर्तनों के सकारात्मक व नकरात्मक प्रभावों की सूक्ष्मता से मूल्यांकन भी करता है। साठ के दशक के पश्चात् हुए अनेक विस्फोटों में सूचना

प्रौद्योगिकी का विस्फोट सर्वाधिक तीव्र और अनपेक्षित रहा है। आज से पचास वर्ष पहले किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि विश्व इस तरह मुठ्ठी में बंद हो जायेगा। सूचना तंत्र के माध्यम से पूरी दुनिया एक गाँव तो दूर एक घर में परिवर्तित हो गई है। इस उपस्थित नए परिदृश्य को भूमण्डलीकरण की संज्ञा दी जा रही है। इस भूमण्डलीकरण ने जब समस्त विश्व को झकझोर दिया तो समकालीन हिन्दी कवि कैसे अछूता रहता? परिणामस्वरूप समकालीन हिन्दी कविता में भूमण्डलीकरण के स्वर कई रूपों में फूट रहे हैं।

स्थूल ढंग से यदि हम वर्तमान युग को वैश्वीकरण (Globalization) का युग कहें तो संभवतः समय की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति होगी। वस्तुतः आज हम जिन बहुमुखी हानि-लाभों की स्थिति से गुज़र रहे हैं, वे इस भूमण्लीकरण की देन हैं। महंगाई, आर्थिक मंदी, सांस्कृतिक, आर्थिक संबंध, वैज्ञानिक अनुसंधान और सूचना तंत्र के प्रचार-प्रचार में अच्छी हो या बुरी भूमण्डलीकरण की ही भूमिका है। भूमण्डलीकरण का उद्देश्य यदि पृथ्वी की एकात्मकता, एक-दूसरे के दुःख सांझा करने की विश्वव्यापी सद्भावना, युद्धों और द्वेषों को समाप्त करने का उद्यम, ज्ञान-विज्ञान के प्रसार की व्यापक पहल होता तो इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होती। आज भूमण्डलीकरण अपने छद्म वेश में उपस्थित है। आज भावनाओं का एकीकरण नहीं है बल्कि इस भूमण्डलीकरण के पीछे पूंजीवाद है। सूचना का मायाजाल मनुष्य को भूमण्डलीकरण के नाम पर भ्रमित कर रहा है। यह वैश्वीकरण बाजार के सहारे खड़ा है जो केवल लाभ की भाषा जानता है। भूमण्लीकरण तो एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ाता है, परन्तु यहाँ तो उत्तरदायित्व समाप्त होता जा रहा है।

भूमण्डलीकरण का एक दूसरा सकारात्मक रूप भी है। निश्चय ही इसके माध्यम से ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा संचार आदि में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। अब किसी भी अविष्कार का लाभ एक स्थान तक सीमित न रहकर विश्वव्यापी हो गया है। यह भूमण्डलीकरण का ही प्रभाव है कि आज विभिन्न क्षेत्रों में अति तीव्र गति से अन्वेषण हो रहे हैं। कभी कल्पना से भी परे रही बातें आज यथार्थ रूप ले रही हैं। फिर भी भूमण्लीकरण को लेकर विचारकों के मत भिन्न -भिन्न हैं। एन्थोनी गिंडेस कहते हैं- "भूमण्डलीकरण का अर्थ विश्वास के सामाजिक संबंधों को इतना प्रचण्ड बना देना है कि दूरदराज के क्षेत्रों में जो कुछ भी स्थानीय स्तर पर घटे उसे हजार मील दूर की घटने वाली घटनाएँ तय करें।"[5] प्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय की अवधारणा अलग ही है- "उपनिवेश समाप्त होने के बाद सब देशों के लिए यह संभव हो गया कि वे दूसरे देशों में जाकर अपने उपनिवेश कायम किये बिना ही अपने साम्राज्य का विस्तार कर सके, इस अवस्था का नाम ही भूमण्डलीकरण है।"[6] इन सबके बीच डॉ नामवर सिंह भूमण्डलीकरण का अस्तित्व ही नहीं मानते, आजकल भूमण्डलीकरण की बात होती है, लेकिन राष्ट्र राज्य बने हुए हैं और बिना वीजा के आप एक देश से दूसरे देश में नहीं जा सकते। क्या किसी गाँव के एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में जाने के लिए किसी की अनुमति लेनी पड़ती है।"[7] डॉ. नामवर के कथन अपने स्थान पर उचित हैं, परन्तु आज भूमण्डलीकरण को सिरे से नहीं नकारा जा सकता है।

समकालीन हिन्दी कविता पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समकालीन कवि कहीं नए अविष्कारों से चकित है तो कहीं चिन्तित है। समकालीन कवि भूमण्डलीकरण को संदेह की दृष्टि से भी देखता है। उसे भूमण्डलीकरण का भयावह रूप भी दिखाई देता है। विष्णु नागर लिखते हैं कि आज मनुष्य भूमण्डलीकरण के बिना रह नहीं सकता- "स्वर्ग में बाजार नहीं है/ भूमण्डलीकरण नहीं है/नहीं है मैंने कहा न/स्वर्ग में कुछ नहीं है/मैं स्वर्ग जा सकता हूँ/वहाँ उम्मीद तो रहती है/कि कुछ हो सकता है।"[8]

कवि विनोद दास भूमण्डलीकरण के एक रूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आंत के कीड़े की भांति मानते हैं- "जहाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ/हमारे आंत में छिपे कीड़े की तरह रहती है/और सिर्फ अपने ट्रेड मार्क से/हमारे निर्मित जूतों को/हमें ही महंगे दामों में बेच देती है।"[9]

कवि वीरेन डंगवाल को लगता है कि दुनिया सिमट रही है परन्तु दिलों की दूरियाँ बढ़ रही हैं। विकास नदी की आर्द्रता सोख रहा है तो वैश्वीकरण मानवमूल्यों के लिए घातक है- "दुनिया एक गांव तो बने/लेकिन सारे गांव बाहर रहे उस दुनिया के/यह कम्प्युटर करामात हो।/कितने अभागे हैं वे पुल/जो सिर्फ गलियारे हैं/ जिनके

नीचे से गुजरती नहीं, कोई नहीं।"[10]

कवि डंगवाल को अपने देसीपने पर ही अधिक भरोसा है। उनका मानना है कि विदेशी चकाचौंध टिकाउ नहीं है- "उन खुशबुओं से कोई ऐतराज नहीं, जो वैश्वीकरण के इन दिनों इतनी भरपूर है कि ठसाठस/भरी बसों में भी गला दबोच लेती है/लेकिन पौदीने की बात इनसे सबसे जरा अलग है।"[11]

भूमण्डलीकरण की एक देन यान्त्रिकीकरण है। मनुष्य मशीनी युग में जी रहा है और उसे अपने से अधिक भरोसा मशीनों पर है। इस पर व्यंग्य करते हुए चन्द्रकांत देवतले लिखते हैं- "अब तो मस्तिष्क है कम्प्युटर के पास भी/कविता लिख देगा कम्प्युटर एक दिन/पर क्या बसन्त/या चिड़िया/अथवा स्तनों से झरता झरना/सम्भव है कभी कम्प्युटर के गर्भ से भी।"

प्रफुल्ल कोलाख्यान भूमण्डलीकरण को तकनीक के माध्यम से समझते हैं - "हैडमास्टर की मेज पर रखा है/एक बड़ा सा ग्लोब/ग्लोब नाचता है/अंगुलियों के इशारे पर/ग्लोब के नाचने से/मौसम कतई नहीं बदलता है/इस बात को कौन नहीं जानता है।"[12]

वस्तुतः भूमण्डलीकरण पूंजीवाद की होड़ है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जाल आर्थिक साम्राज्य की रचना कर रहा है। ओम भारती इस व्यूह रचना का वर्णन इस प्रकार करते हैं- "भारत की हाटों में शुरू हो चुकी है/दुनिया की सबसे जबरदस्त जंग/ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मिला-जुला प्रयोजन/मिलीजुली भव्य और मारक लड़ाई/ अनेक मोर्चे खुले हैं एक साथ।"[13]

भूमण्डलीकरण के बाद स्थिति तेजी से बदलने लगी हैं। जहाँ राज्य पहले अपनी लोकप्रियता के लिए गरीबों के प्रति साथ रहता था, वहाँ भूमण्डलीकरण विश्व में राज्य वर्चस्वशाली लोगों के लिए गलीचे बिछाने का कार्य कर रहा है। अखिलेश ने उचित कहा है- "वस्तुतः अमीरों के लिए राज्य का यह तथाकथित लचीला और उदारवादी आचरण एक तरह से साधारणजन के लिए दमनकारी ही था, उसके हित, उसकी रियासतों को क्षतिग्रस्त करने के कारण वह दमनकारी था तो औद्योगिक घरानों को जनता को लूटने का स्वर्णिम अवसर मुहैया कराने का कारण था। यह बहुत लुभावना और भयानक था जिसमें राज्य विनम्र, दूरंदेशी और उदार दिखता था, किन्तु वह चालू और निर्भय था। वह अपने फरेब पर मुग्ध और आश्वस्त था कि मामूली लोग हकीकत नहीं जान सकेंगे।"[14] हुआ भी यही परिणामस्वरूप लोगों के सपने बिखरने लगे- "नींद नहीं आती सपने आते/सपनों में सपने खो जाते/परियों ने भी आना छोड़ा/सपने भी लगते सरकारी।"[15]

वैश्वीकरण के सबसे मजबूत स्तम्भ बाजारीकरण ने मानव की आत्मा को आहत कर दिया है। भूमण्डलीकरण का यह खौफनाक चेहरा सामान्यजन को लाचार व दयनीय बना रहा है। छोटे-छोटे व्यापारी, कलाकार, करतब दिखाने वालों को पहले हाशिए पर धकेला जाता है और फिर दृश्य से ही हटा दिया जाता है और फिर जीवन से भी।

"बदल गया है अर्थतन्त्र की हिंसा का शिल्प/अब वह सीधे बाजार से विस्थापित नहीं किया जायेगा/सब कुछ बिल्कुल प्रजातान्त्रिक तरीक से होगा/महज परास्त कर दिया जाएगा उसका उद्यम/निरस्त कर दी जायेगी दुकानदारी की उसकी अर्जित कला/और एक दिन अपने अंधेरे में वह खरीदेगा सल्फास।"[16]

समकालीन कवि पंकज राग अपने काव्य संग्रह 'यह भूमण्डलीकरण की रात है' में भूमण्डलीकरण को उपनिवेशवाद से जोड़कर देखते हैं- "हमसे अधिक 1857 को साथ लेकर चले हैं, यही उपनिवेशी ताकत/जो अब सभी आडम्बर छोड़ पूरे निवेशी हैं। भौतिक जगत से अन्तर्चेतना तक चलता है निवेश का खेल/तभी तो अब खतरे साफ नजर नहीं आते/वक्तइतनी तेजी से बीतता है खिलौने के बीच/कि विचार बन नहीं पाते नजरें टिक नहीं पाती/जीवन शैली का अर्थ मानो एक क्षण हो गया/और क्षण से क्षण की कुलांचों में पूरी पृथ्वी को नाप लेना ही माद्दा हो/क्योंकि पृथ्वी जब एक सी होने का आभास देती है/पर पृथ्वी एक है कहाँ?/न कभी थी न है।"[17]

अनामिका की 'खुरदरी हथेलियाँ' की कुछ कविताओं में भूमण्डलीकरण और उसके मुख्य तत्त्व बाजारवाद पर गहरी चिन्ता प्रकट की गई है। जिसकी समीक्षा में विजय वर्मा लिखते हैं- "वैश्वीकरण और बाजारवाद के दौर में विश्वग्राम अपने आप में बहुत कुछ समेटे हुए है।

एक ओर लाभ है तो दूसरी ओर मूल्यों का विखण्डन। मनुष्य के अन्दर के सूक्ष्म तत्त्व को झकझोरता हुआ अलग व्यथा की एक इबारत लिख जाता है जिसे अनुभव करना और उसे शब्दों में उकेरना संभवतया अनामिका जैसी अति सूक्ष्म संवेदी रचनाकार का हौंसला और संकल्प हो सकता है, जो अपने आप में असाधारण प्रयास ही नहीं एक सफल, सशक्तएवं मार्मिक चित्रण की सृष्टि है।"[18]

उधर जगदीश चतुर्वेदी बार-बार भूमण्डलीकरण की पीड़ा का अहसास महानगरीय जीवन की त्रासदी से व्यक्त कर रहे हैं। श्री चतुर्वेदी विश्व हिंसा का प्रतिपादक भी भूमण्डलीकरण को ही मानते हैं- "मुझे दहशत नहीं होती यह सुनकर कि/एक पूरा मुल्क आग में झुलसा दिया गया/ यह तो इस शताब्दी का सत्य है।"[19]

आज भूमण्डलीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की ऊँची पगार ने मनुष्य को जाति, धर्म, संस्कृति आदि से तोड़ दिया है। इस पर समकालीन कवि अपनी चिंता प्रकट करते हैं- "मल्टीनेशनल कंपनी में बहुत ऊँची पगार वाली नौकरी/मिलने पर उसने उड़ेली अपनी आस्थाएँ/पूरे जोर-शोर से/मैं जाति, धर्म, सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, राष्ट्रीयता/ वगैरह को नहीं मानता.... मेरा संयम भुरभुराता लगा मुझे।"[20]

उपर्युक्तविवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन हिन्दी कवि भूमण्डलीकरण उसके छद्मवेश से न केवल परिचित है अपितु उसके कुप्रभावों से चिन्तित है। ये हिन्दी कवि अपनी कविता के माध्यम से भूमण्डलीकरण के कुरूप चेहरे का प्रतिरोध करते हैं। इनका मानना है कि यह तथाकथित भूमण्डलीकरण हमारी वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना वाला भूमण्डलीकरण नहीं है, अपितु कुछ पूंजीपति राष्ट्रों द्वारा फैलाया गया जाल है। हमें इसकी चकाचौंध में उलझने की अपेक्षा इससे सावधान रहना चाहिए।

संदर्भ-

1. जगदीश चतुर्वेदी (संपा.), प्रारम्भः भूमिका, पृ. 5
2. हेतु भारद्वाज (संपा.), पंचशील शोध समीक्षा, जनवरी-मार्च, 2009, पृ. 54
3. नन्दकिशोर नवल, समकालीन काव्ययात्रा, 1994, पृ. 8
4. डॉ. रामदरश मिश्र, आधुनिक हिन्दी कविताः सृजनात्मक संदर्भ, पृ. 76
5. An Anthology of Modern Poetry Introduction; p. 60
6. डॉ. मैनेजर पाण्डेय, भाषा और भूमण्डलीकरण, पृ. 9-10
7. रमेश उपाध्याय, कथन-55, जुलाई-सितम्बर, 2007
8. विष्णु नागर, स्वर्ग में कुछ भी नहीं है, वाक्-2, पृ. 80
9. वसुधा, अंक 29, पृ. 22
10. वीरेन डंगवाल, दुष्चक्र में स्रष्टा, पृ. 19
11. वही, पृ. 62
12. प्रफुल्ल कोलाख्यान, मंजी हुई शर्म का जनतंत्र, पृ. 26
13. ओम भारती, पूंजीवाद के विराट अत्याचार के बीच, पृ. 21
14. तद्भव, लखनउ, जुलाई 2009 का सम्पादकीय, पृ. 111
15. अश्वघोष, महंगाई की मार, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2007, पृ. 132
16. (संपा.) बी.बी. कुमार, चिन्तन सृजन, अप्रैल-जून, 2011, पृ. 83
17. पंकज राग, यह भूमण्डलीकरण की रात है, पृ. 219
18. समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2007, समीक्षा
19. अनुभूति चतुर्वेदी, जगदीश चतुर्वेदी की 75 कविताएँ, पृ. 46
20. समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी 2010, राजेन्द्र चौधरी की कविता- मैं पुत्र, पृ. 42

एसोसिएट प्रोफेसर
दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हिसार-125001, हरियाणा
मो.: 09812108255
e-mail: skkbishnoi@gmail.com

हिंदी कविता में स्त्री

डॉ.एस रज़िया बेगम

अतीत में जब हम स्त्रियों को देखते हैं कि वे किस तरह की थी। भारत के विभिन्न तबकों समुदायों में अलग-अलग तरह की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ रही हैं, लेकिन कमोबेश देखा जाए तो हमारा जो आधुनिक समाज है और जिसे देखने परखने की चीजें उपलब्ध हैं। साहित्य के संदर्भ में तब से हमारे पास चीजों का तुलनात्मक रूप से देखने की एक दृष्टि है और हम देख सकते हैं स्त्रियों की ओर हम लोग अपने जीवन में भी बदलाव देखते आये हैं वह हमारे सामने एक दृष्टांत के रूप में दिखता है कि पहले की जो स्त्रियाँ हैं- हमारी दादी-नानी या हमारे माँ के समय की और आज हमारे समय की तो निश्चित तौर पर ये तीनों पीढ़ियों के सामाजिक जो सरोकार हैं उसमें और उनकी स्थितियों में बहुत बदलाव आये है। लेकिन बहुत सारे जो बदलाव हैं उनके अंतर्गत कुछ मूलभूत प्रवृत्तियाँ अभी हैं जो पूरी तरह से बदली नहीं है और जरूरी भी नहीं है कि हर स्थितियाँ हर समय बदल जाये, लेकिन हम लोग उसपर बातचीत करते हैं, विचार-विमर्श करते हैं उसकी तरह जो कुरीतियाँ, जो रूढ़ियाँ समाज में व्याप्त होती हैं वे समय-समय के हिसाब से उसका निदान भी निकलता रहा है और इसलिए यह विमर्श और संवाद की प्रक्रिया बहुत ही जरूरी है क्योंकि यह संवाद ही है, विचार-विमर्श है जिसने बहुत सारी चीजों को हमारे सामने बदला है अगर हम इतिहास के पन्नों में झाँके तो भारत में ही एक समय में सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा प्रताड़ना, अशिक्षा जैसी चीजें थी। लेकिन इसी विचार-विमर्श, संवाद ने लोगों के अंदर यह जागृति पैदा की जिसके कारण समय के हिसाब से बहुतायत ये चीज़ें समाप्त हो गईं। समाज से तो ये विमर्श के साथ ये चीजे बदलती हैं। समाज से और हमारी कोशिश भी है कि हमारा विमर्श कैसे सकारात्मक चीजों को लेकर चले जिसे समाज को बदलाव की ओर प्रेरित करता हो और हम लोग देखते भी है। समाज में जो स्थितियाँ रही हैं और आज जो स्थितियाँ हैं उनमें बदलाव है महादेवी वर्मा जी - "मैं नीर भरी दुख की बदली/ विस्तृत नभ का कोई कोना/मेरा न कभी अपना होना/ परिचय इतना इतिहास यही/उमड़ी कल थी मिट आज चली।"[1]

जो असंतोष उन्हें अपने भीतर दीखता रहा वही वे अपनी बाद की पीढ़ी को आगे लाने के लिए प्रयास करती रही और उनके जो सपने दूर नहीं हो पाये वे अपनी बेटियों को वे सपने, वे पंख, वे उड़ान देना चाहती हैं और उन्होंने अपनी विवशता को ताकत बनाकर सामने ले आई और उस हौसले और पंखों से बेटियों को यहाँ तक पहुँचाया, यहाँ पर कात्यायनी की एक कविता उद्धत करना चाहूँगी - "हॉकी खेलती लड़कियाँ/ लड़कियाँ पेनाल्टी कार्नर मार रही हैं/लड़कियाँ पास दे रही हैं/लड़कियाँ गोल.....गोल चिल्लाती हुई/बीच मैदान की ओर भाग रही हैं/लड़कियाँ एक दूसरे पर ढह रही हैं/एक दूसरे को चूम रही हैं/और हँस रही हैं।"[2]

निश्चित तौर पर ये तीनों पीढ़ियों के सामाजिक जो सरोकार हैं उसमें और उनकी स्थितियों में बहुत बदलाव आये हैं। लेकिन बहुत सारी जो बदलाव हैं उसके अंतर्गत कुछ मूलभूत प्रवृत्तियाँ अभी भी जो पूरी तरह से बदली नहीं हैं और जरूरी भी नहीं है कि हर स्थितियाँ हर समय बदल जाये लेकिन हम लोग उस पर बातचीत करते हैं, विचार-विमर्श करते हैं। उनके तहत जो रूढ़ियाँ समाज में व्याप्त

होती हैं वे समय-समय के हिसाब से उसका निदान भी निकालता रहता है और इसलिए यह विमर्श और संवाद की प्रक्रिया बहुत जरूरी है। क्योंकि वह विमर्श और संवाद ही है जिससे हम ना सिर्फ वर्तमान स्थिति का आकलन करते हैं बल्कि उस स्थिति से बाहर आने का समाधान भी प्राप्त करते हैं। क्योंकि यदि देखा जाये तो हम समाज में फैले ऐसे बहुत सी कुरीतियों या रूढ़ियों को वैसे ही विमर्श और संवाद के जरिये ही बाहर कर पाये। चाहे बाल विवाह की बात हो, विधवा विवाह की बात हो, सती प्रथा की बात हो, दक्षिण में देवदासी प्रथा हो या केरल में वह स्तन ना ढकने जैसी कोई परम्परा रही हो। जाहिर है हम इन चीज़ों से बहुत हद तक बाहर आ चुके हैं और आज हर क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति बहुतायात में देखी जा सकती है।

नौकरी करने या घर से बाहर निकलने में भी पाबन्दियाँ अब भी हैं। वे चीजें उन्ही सांस्कृतिक रूढ़ियाँ है उनके परिणाम के रूप में दिखाई पड़ते हैं - महेन्द्र गगन/सौ की होने आई दादी/खो चुकी है/अपना बोध/उन्हें नहीं याद/ कौन-सी कहाँ दी/क्या खाया/रहती भोपाल में/और इसे समझती इंदौर/बेटियों को बहुएँ/और बहुओं को/ बेटियाँ समझ पहचानती है/बावजूद इसके/नये होते जा रहे समय में/जहाँ सब कुछ/दिख बिक रहा है/सर पर/पल्लू रखना नहीं/भूलती दादी/स्त्री होना/नहीं भूलती दादी।

कार्तिक स्नान के लिए जाती औरतें - अनिल मंगल/ हाड़ कंपाते जीवन में/क्या पाने के लिए ठिठफर रही है वे नंगे बदन/क्यों कर रही हैं वे उपवास एक/जीवन को धकियाते/क्यों नहीं है सैकड़ों बार सुनी-सुनाई व्रत-कथाओं में/उनके जीवन की एक पंक्ति भी।"[3]

अब जहाँ समाज में स्त्रियों को निकलने की मनाही थी, जहाँ पढ़ने की मनाही थी, जहाँ नौकरी की मनाही थी और जहाँ एक पितृसत्तात्मक समाज में जहाँ वंशानुगत रूप में उत्तराधिकार हमेशा एक पुरुष को ही मिलता आया था क्योंकि भारत में लम्बे समय तक एक राजंतत्र की परम्परा रही है तो उस परम्परा में निश्चित तौर पर राजनीति में स्त्रियों के परिवेश के लिए जगह बहुत ही सीमित रही है। यदा-कदा कुछ उदाहरणों को हमलोग छोड़ दे तो- कित्तूर की रानी चेन्नमा (जन्म 1778- मृत्यु- 1829) रानी लक्ष्मी बाई से भी पहले कित्तूर की रानी चेन्नमा ने अग्रेजों से जमकर लोहा लिया था। रानी चेन्नमा कर्नाटक के कित्तूर की थी, जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ बिगुल बजाया। रानी लक्ष्मी बाई (जन्म- 1835, मृत्यु- 1858) जो झाँसी की रानी थी। रानी दुर्गावती (16 वर्ष तक राज्य संभाला) वर्तमान जबलपुर उनके राज्य का केन्द्र था। महारानी तपस्विनी, रानी द्रौपदी आदि।

तो बहुत कम उदाहरण मिलता है क्योंकि एक लम्बे समय से राजतंत्र को जो नियम रहा है उनके अंतर्गत महिलाओं की उपस्थिति कम थी और लम्बे समय तक रहने के कारण सांस्कृतिक रूप से पितृसत्तात्मक समाज में जो परम्परा बनी थी स्त्रियों को राजनीति में आने का अवसर कम मिला, लेकिन धीरे-धीरे जैसे शिक्षा का अवसर मिला और उससे जो जागरूकता बढ़ी और स्त्रियाँ आजादी के समय उनकी महत्वपूर्ण भूमिका भी दिखाई पड़ती है। जैसे- झलकारी बाई, झांसी की रानी, बेगम हजरत महल, सुचेता कृपलानी, सरोजनी नायडू, डॉ. लक्ष्मी सहगल, दुर्गा बाई देशमुख आदि। हालांकि स्त्रियों की उपस्थिति कम रही।

आगे शिक्षा का अवसर मिलने पर स्त्रियों को आत्मनिर्भर होना शुरू हुआ। नौकरी पेशों में आना शुरू हुई। और आगे बढ़ते हुए हम देखते हैं कि इंदिरा गाँधी जैसी कुछ खास स्त्रियों के राजनीति में आने से देश में स्त्रियों के अंदर जागरूकता पैदा हुई और परिणामस्वरूप स्त्रियाँ राजनीति में कम मात्रा में ही सही लेकिन आई और बाद में पंचायत या विधान सभाओं में महिलाओं को लेकर जो कुछ सीटें

आरक्षित की गईं, निश्चित तौर पर इनसे भी उन्हें आगे आने का मौका मिला है क्योंकि महिला आरक्षित सीटें बनाई गई हैं, लेकिन यह एक सच्चाई है कि अभी भी बहुत सारी जो सीटें हैं जहाँ उनके पति जो वे कहीं न कहीं प्रमुख की भूमिका में रहते हैं लेकिन ये तो तय है कि इससे जो चेहरा स्त्रियों का आया है वह धीरे-धीरे एक समय में उनको स्वतंत्र अस्तित्व में जरूर लायेगा। अब साहित्य में इनकी उपस्थिति के बारे में बात करे तो हम देखते हें कि राजनीतिक रूप में स्त्रियों को लेकर साहित्य में चर्चा कम हुई है और इसकी जरूरत है कि जो साहित्य है या फिर समय के साथ रचा जाएगा तो जरूरी इनकी बढ़ती भागीदारी के साथ साहित्य में भी जो राजनीति में स्त्रियों की स्थिति है उसको लेकर साहित्य में भी उनकी उपस्थिति की भागीदारी बढ़ेगी और अभी जो कुछ हम साहित्य में देखते हैं वे न्यून मात्रा में है या परोक्ष रूप से उनको लेकर सामने आती है और कुछ चीजें हैं जो लोगों के सामने उपस्थित है। जैसे- निरंजन क्षोत्रिय/महिला सरपंच/रामदेई मूलतः सरपंच नहीं थी/वह स्त्री थी मूलतः जो सरपंच बनी/वह घर की देहरी लांघ नहीं सकती थी/और पंचायत घुस नहीं सकती थी देहरी के भीतर/सो पाँच साल तक गाँव में/चलता रहा बस कुछ स्मूथली/बालात्कार/दहन/प्रताड़ना। ये जो स्थितियाँ है हमारे सामने स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं लेकिन इन स्थितियों के पीछे कुछ प्रवृत्तियाँ होती हैं जो हमारे सामने तो नहीं आती लेकिन वो एक अंतः बल के तौर पर वह समाज में काम करती रहती है। आंतरिक शक्तिके रूप में वो काम करती रहती है जो प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती और संस्कृति एक ऐसी ही चीज है जहाँ सकारात्मकता भी है और बहुत सारी नकारात्मकता भी है जो परम्परागत रूढ़ि के रूप में हमारे सामने चली आती है, जहाँ हम लोग एक तरफ देते है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।जहाँ स्त्री जाति का आदर सम्मान होता है, उनकी आवश्यकताओं, अपेक्षाओं की पूर्ति होती है, उस स्थान, समाज तथा परिवार पर देवतागण प्रसन्न रहते हैं। जहाँ ऐसा नहीं होता है और उनके प्रति तिरस्कार व्यवहार किया जाता है, वहाँ देवताओं की कृपा नहीं रहती। कहा जाता है तो निश्चित तौर पर ये चीजें रही होगी या ये भी हो सकता है कि उस समय स्त्रियों की स्थिति दयनीय रही होंगी और उनको उभारने के लिए भी ये बातें समाज में कही गई होंगी क्योंकि उनकी स्थिति अच्छी नहीं होंगी तो समाज की स्थिति भी अच्छी नहीं हो सकती और उनको महत्व दिया जाना चाहिए और उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

साहित्य हमारे भीतर एक कैप्सूल की तरह काम करता है जिससे समाज के ताने-बाने को सही से समझ पाते हैं या साध पाते हैं और तो और जहाँ-जहाँ हम लड़खड़ाते हैं वहाँ साहित्य ही सहारा बन खड़ा होता है, और आज जिस तरह से स्त्रियाँ भी विमर्श कर पा रही हैं वह इसी साहित्य और समाज की समझ है जो स्त्रियों के भीतर समाज में बराबरी की चेतना पैदा की और साथ ही उसी के फलस्वरूप उसके भीतर आत्मविश्वास जागृत हो पाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. http://kavitakosh.org/kk
2. स्त्री मुक्तिका सपना पृष्ठ संख्याः 138
   अरविंद जैन, लीलाधर मंडलोई
3. स्त्री मुक्तिका सपना पृष्ठ संख्याः 439
   अरविंद जैन, लीलाधर मंडलोई
4. स्त्री मुक्तिका सपना पृष्ठ संख्याः 409
   अरविंद जैन, लीलाधर मंडलोई

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
विज्ञान एवं मानविकी संकाय
एस. आर. एम प्रौद्योगिकी संस्थान,
कट्टनकुलाथुर-603203 , मोबाइल-7358293478

फैलता बाज़ार और बढ़ती अपसंस्कृति

डॉ.अंजली जोसफ

मीडिया का प्रभाव हमारे समाज पर सबसे अधिक पिछले दो दशकों में पड़ा है। वैश्वीकरण की अवधारणा से देशी-विदेशी चैनलों के प्रसारण विश्व स्तर पर आपस में जुड़ने लगे। यहीं से सांस्कृतिक संकट के विभिन्न पहलू शुरू होने लगे। हमारे समाज में भूमंडलीय संस्कृति अपसंस्कृति के रूप में है जिसमें संकीर्ण व्यक्तिवाद, लुभावना बाज़ारवाद, स्वार्थता,अमानवीय व्यावसायिक सोच, हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ, सांस्कृतिक विरासत का लोभ, संवेदनहीनता, उपभोक्तावादी दृष्टिकोण और भी बहुत-सी विचारधारायें मीडिया के सहारे प्रसारित होने लगीं। भारतीय संस्कृति के ध्वंस में नव उपनिवेशी बाज़ार का हाथ है। यह ध्वंस बाज़ार मीडिया के द्वारा करवाया जा रहा है जिससे अपसंस्कृति आज मज़बूत होती जा रही है।

अपसंस्कृति संस्कृति का विकृत रूप हैं। जहाँ नयी आर्थिक व्यवस्था विकास और आधुनिकीकरण के ज़रिए ग्लोबल संस्कृति पर जोर दिया जाता है वहाँ दूसरी और हमारी संस्कृति और परंपराओं को हाशिए की ओर धकेल रही है। बाज़ार से जुड़कर यह नयी संस्कृति अपसंस्कृति का रूप धारण करके अपना वर्चस्व स्थापित करने लगी। 'बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य का सबसे भयावह पहलू है अपसंस्कृतियों का उदय। इनके प्रभाव से समाज के कुछ विशेषाधिकार प्राप्त अंग सामाजिक सरोकारों से कट जाते हैं और व्यक्तिकेन्द्रित भोगवादी जीवन-दृष्टि से नियंत्रित होने लगते हैं।... यह अपसंस्कृति अनियंत्रित विकास और छद्म आधुनिकता की देन है, जिनसे समृद्ध और विकासशील देश आज त्रस्त हैं और सार्थक विकल्पों की तलाश कर रहे हैं।' (श्यामचरण दुबे, समय और संस्कृति, पृ.171) असल में मीडिया से जुड़कर दुनिया में सांस्कृतिक एकरूपता को लाने के पीछे पूँजीवादी ताकतों तथा बाज़ारवादी रवैया रखनेवाले शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा महान सांस्कृतिक विरासत को मिटाने की साजिश है। मीडिया उपभोग संस्कृति, पॉपुलर संस्कृति जैसी बहुत तरह की नयी-नयी विकृतियों को भारतीय शासन पर थोपने की कोशिश कर रही है जो अपसंस्कृति के अन्दर आती है। असल में ऐसी संस्कृति जीवन के प्रत्येक क्षण, प्रत्येक स्थिति को बाज़ार के विस्तार के लिए भुनाने को तैयार रहती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन संचार माध्यमों से सांस्कृतिक जड़ों पर होने वाला हमला देश की युवा पीढ़ी में मूल्यों की गिरावट तथा अपनी संस्कृति के प्रति हीनता बोध से ग्रस्त कर दिया है। सिर्फ युवा पीढ़ी ही नहीं बच्चे से लेकर बुजुर्ग वर्ग तक इस लिप्सावादी संस्कृति के चपेट में है। दूसरे शब्दों में कहें तो बाजारवाद अपसंस्कृति को सर्वत्र थोपने का एक योजनाबद्ध प्रयास है। यह कार्य मीडिया के द्वारा पूरा किया जा रहा है।

अपसंस्कृति विकासशील देशों को चकनाचूर कर रही हैं। बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य का सबसे भयावह पक्ष ही अपसंस्कृतियों का प्रसार है। जो हमारी सामाजिक नींव को ही हिला रही है। मीडिया के प्रोत्साहन विघटन, हिंसा, मूल्य विघटन के रूप में प्रचार-प्रसार हो रहा है संचार माध्यमों में भयंकर रूप से सामाजिक संवेदनशीलता घट रही है। बाज़ार अपने मुनाफे के लिए संवेदनायें एवं सरोकारों को छोड़ देता है। कभी कभी इससे भी वे मुनाफा कमाते हैं।

नासिरा शर्मा की कहानी 'इब्ने मरियम' में मीडिया की अमानवीय नज़रिए का चित्रण किया है। यह कहानी भोपाल गैस दुर्घटना पर आधारित है। दुर्घटना का वातावरण ताहिर बटुआ को पागल बना देता है उसका हालात दिन-ब-दिन बदत्तर होता जा रहा है मीडियावाले इस पागलपन को बेचकर पैसा कमाने पर तुले हैं। बाज़ारवादी दुनिया में संवेदना और सहानुभूति के लिए कोई जगह नहीं है। वे इनको केवल उत्पादन और विनिमय की दृष्टि से देखता है। कहानी के मुताबिक, 'ताहिर बटुएवाले ज़मीन पर पालथी

मारकर पैठ गए। गोद में स्टोव रखकर उस पर रकाबी रखी और बड़े-बड़े निवाले निगलने लगे। उनके चेहरे पर इस वक्त कुछ ऐसा था जो अच्छे-अच्छे मजबूत दिलवालों का दिल पिघला सकता था। बोचारगी और भूख का इस सरापा तस्वीर को कैमरामैन आगे बढ़कर अपने कमरे में कैद करने में कामयाब हो गया' (नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, पृ. 139-140) बाज़ारतंत्र ने जिस पर सबसे अधिक आक्रमण किया है वह मनुष्य की संवेदना है। मीडिया जगत् भी ज्यादातर इसी कार्य पर केन्द्रित किया है। जहाँ जन्म-मरण, खुशी-गम सब कुछ एक ही तुले पर नापे जाते हैं। सब कुछ मुनाफे के लिए है। ताहिर के पागलपन यहाँ लाभ बटोरने की वस्तु है। उसे जीवन्त बनाने के लिए कृत्रिम वातावरण तैयार करते हैं। इसके लिए वे गैस दुर्घटना का भयंकर माहौल कृत्रिमता से पैदा कर के ताहिर का दिमागे सन्तुलन बिगाड़ दिया जाता है। ताकि वे असली रूप को अपने कैमरे में खींच सके। बाज़ारवादी युग में आम आदमी की जीने का अधिकार उसकी स्वतंत्रता पर प्रश्नचिह्न है मीडियावालों के लिए ताहिर और उसकी संवेदनायें उपभोग की वस्तु मात्र है। इस संवेदनाहीन दुनिया से विस्थापित होकर डराने कब्रिस्तान में अपना डेरा जमा लिया। आखिर इब्ने मरियन की प्रतीक्षा करते करते अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है। आम आदमी की सबसे बड़ी त्रासदी भी यही है। क्योंकि बाज़ार में खबर भी एक बिकाउ माल होता है।

इस बात में सन्देह नहीं है कि भारतीय कला एवं संस्कृति का वैश्विक प्रभाव कोई नयी घटना नहीं है पर वर्तमान युग में बाज़ारीकरण के कारकों एवं कारणों ने इसको और ज्यादा व्यावसायिक बना दिया है। भारतीय कला के विभिन्न आयाम साहित्य, कला, संगीत आदि समूचे विश्व में अपनी पहचान बना चुके हैं।

संजीव की कहानी लिटरेचर में एक प्रमुख आदिवासी साहित्यकार दीपक सूरी मल्टीनेशनल कंपनी से मिलकर वनस्पतियों का बृहद ज्ञान बिकने में उनकी मदद कर रही है। कंपनीवाले यह जानते हैं कि वह वनस्पतियों के संबन्ध में सबसे बड़ा जानकार नहीं है फिर भी ऐसा होने का दावा करते हैं। दवा कंपनी का मीडिया एक्सपर्ट कहता है कि वह अपने साहित्य द्वारा समाज में ऐसे काल्पनिक रोग की दहशत निर्माण करे जिसकी दवा कंपनी ने पहले से निर्माण किया है। कहानी में इस प्रकार उल्लिखित किया है कि, 'उस दवा का रोग आपको तैयार करना है, उसके लक्षण, उसके एफेक्टस पहले आप लिटरेचर तो तैयार करो, फिर एक धासू -सा नाम भी आप दे दोगे। लिटरेचर की टाइटिल तो आप देते ही है, मानव मन के ऐसे चितेरे के लिए यहाँ बाएँ हाथ का खेल है।' (संजीव की कथा यात्रा : तीसरा पड़ाव, पृ. 48) मीडिया के द्वारा साहित्य भी बाजार की बिकाउ वस्तु बन गया है। आज की दुनिया में साहित्य कितना अधिक अपेक्षित है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। ग्लोबल विश्व की बहुआयामी समस्याओं को उद्घाटित करने में साहित्य मदद कर सकता है। वह यथार्थ को परामार्जित करनेवाली कल्पना है। लेकिन बाज़ार अपनी ताकत से मीडिया द्वारा साहित्य को कृत्रिम यथार्थ पैदा करने में मज़बूर करा रहा है। वे आर्थिक हितों के लिए साहित्य को असल में विचारहीन बनाते है। वे कहते हैं, 'कला, संस्कृति की बरसों की विरासत और आज तक की उपलब्धियों को ऐड (विज्ञापन) में इस्तेमाल कर हमने उसे मरने से बचा लिया है। आज वो उतना ही सफल है, जो जितना बड़ा मिथ क्रिएट कर सकता है। हम और आप मिलकर यह काम कर सकते हैं।' (वहीं, पृ. 45) मुक्त मंडी का मीडिया आर्थिक ललक की उन्माद में व्यावसायिक मिथ को पैदा करता है। इस उन्माद में साहित्य को भी इनका शिकार होना पड़ा है। इस कहानी के द्वारा संजीव ने बड़े-बड़े दावे करनेवाले और कृत्रिम दवा बेचने तथा रोग पैदा करनेवाले और अपने लाभ के लिए मीडिया द्वारा साहित्य का दुरुपयोग करके भयानक षड्यंत्र रचकर आम जनता को लूटनेवाली बड़ी-बड़ी दवा कंपनियों के मालिकों की पोल खोल दी है।

कहानी में समकालीन वास्तविकताओं से गुज़रते हुए कवि रामगोपाल दो फैसले लेते हैं। जो इस कहानी के मुख्य बिन्दु है ।रामगोपाल उत्तरप्रदेश के गाजियाबाद के कवि है जो एक राष्ट्रीय दैनिक के दफ्तर में काम कर

रहे हैं। वे इतिहास के ज्ञानी है लेकिन वर्तमान उनके समझ में नहीं आता। इसके लिए वह कोशिश भी करते हैं और आखिर स्वयं बदल जाता है। एक दिन वह टी.वी में विज्ञापन देखता है। उसी दौरान उन्होंने दो फैसले किए पहला नाम बदलना और दूसरा स्कूटर खरीदने का फैसला। पालगोमरे का मानना है कि, 'स्कूटर प्रतीकात्मक रूप से इस नवऔपनिवेशिक, भू-मंडलीकृत उपभोक्तावादी, बाजारू साम्राज्यवाद का सशक्तप्रतिरोध है।' (उदय प्रकाश, पॉलगोमरे का स्कूटर, पृ. 53) दरअसल पॉलगोमरा ऐसे एक व्यक्ति का प्रतीक है जो बाज़ार और मीडिया की ताकत के दम पर निर्मित अपसंस्कृति के घेरे में फँसकर विकृत मानसिकता को अपनाकर चकनाचूर हो जाए। मीडिया द्वारा बाज़ार संस्कृति का फैलाव हो रहा है जो कि गरीबों को और गरीब बना रहा है और अमीरों को और अधिक धन कमाने का मौका परोस रहा है। भारतीय मध्यवर्गीय घरानों को लक्ष्य करके ही यह लूट-खसोट की प्रवृत्ति जारी है। वैसे भी पॉलगोमरा का स्कूटर का पॉलगोमरा इस त्रासदी का शिकार है। इसके अलावा कहानी में और भी कई मुद्दे प्रस्तुत किए हैं।

बाज़ारवादी दौर में माध्यम हमारे बीच सदैव बना रहता है और एक पुरानी सामंती संस्कृति का पुनसृजन का कारोबार करता है। जहाँ विकास का संबन्ध पूँजी से है, पूँजीपतियों का कार्यक्षेत्र सभी जगहों पर पड़ता है। वहाँ मीडिया की भूमिका पूँजीपति साम्राज्यवादी ताकत को बढ़ावा देना है। मीडिया के बाजारीकरण से संपन्न वर्ग पनप रहे हैं और पिछड़े दलित वर्ग की स्थिति हाशिएकरण को छू रही है। मीडिया का नियंत्रण इन सत्ताधारियों के हाथ में है जो दलितों की समस्याओं को यदि तोड़-मरोड़ देते है या मुनाफे के लिए बेचने का इरादा लेता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि माध्यमों में दलितों पर होनेवाले अत्याचारों के दृश्यों का सवर्ण मानसिकता रखनेवाला मनोरंजन के रूप में देखते है। मीडिया साम्राज्यवाद का अन्य पहलू है यह।

ओमप्रकाश वाल्मीकी की 'घुसपैठिए उच्च शिक्षा संस्था से जुड़े दलित शोषण की कहानी है। उसे हर तबके से शोषण तथा उत्पीड़न के सिवाय और कुछ नहीं मिलता है। जातिगत भेदभाव से आत्महत्या करनेवाले दलित वर्गों का चित्रण संचार माध्यम किस प्रकार करता है या उसके प्रति मीडिया की नज़रिए की ओर भी कहानी संकेत देती हैं। दलितों के प्रति समाज पहले से ही सेवंदनहीन रहा था और इस प्रवृत्ति को बाज़ार ने मीडिया के ज़रिए और भी अमानवीय बना दिया। विश्व बाज़ार अपने लाभ के लिए मीडिया का इस्तेमाल करके यह घिनौना खेल बरकरार रखता है। इस सभ्यता को आपनानेवाले सवर्ण समाज दलितों के प्रति मनोरंजन उद्योग की नज़रिया जमाता है बाज़ार से प्रभावित वर्ग पिछड़े समाज के प्रति असंवेदनशील हो जाता है। नव-उदारतावाद का बाज़ार और मुनाफाखोरी पर इतना ज्यादा जोर है कि हाशिये कृत समाज के प्रति भावना विहीन ही रहे और उसे हमेशा सताते और शोषण का शिकार बनाये रखे यही सच्चाई है और जिसके प्रोत्साहन में खड़ा है माध्यम व्यवस्था। साथ ही कहानी में यह भी बताया गया है कि सूचना को किसके पक्ष और किस प्रकार माध्यम में प्रसारित कर रहा है। कहानी के मुताबिक, 'अखबारों को भी रपट भेजी थी जिसमें दलित छात्रों के उत्पीड़न को मुख्य मुद्दा बनाया था लेकिन अखबारों ने इसे रैगिंग कहकर छापा। दलित छात्रों के साथ होनेवाली ज्यादतियों का कहीं जिक्र तक नहीं था। ' (ओमप्रकाश वाल्मीकि, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 81) मीडिया अब उद्योग का रूप धारण कर लिया है जहाँ उसकी हैसियत साम्राज्यवादी बाज़ारवादी शक्तियों के कठपुतली के रूप में है। फलतः उनकी इच्छा के मुताबिक स्वयं को परिवर्तित करने की भयंकर प्रवृत्ति माध्यमों में देखी जा सकती है। संपन्न वर्गों की खुशी में तथा धनार्जन की प्रवृत्ति में दलित उत्पीड़न जैसे संवेदनशील मुद्दे हाशिये पर चले जाते हैं। उनकी दृष्टि में तो जहाँ लाभ मिले, वहीं महत्वपूर्ण है। अतः मीडिया का चरित्र मनोरंजक एवं बिकाउ हो गया है, बाज़ार की आवश्यकता और आविष्कार के इशारे पर काम करनेवाला पुर्जा मात्र रह गया है।

स्त्री आजकल मीडिया का कवरेज एरिया है। एक स्त्री की अवधारणा उसकी पहचान क्या है यह मीडिया तय करता है। स्त्री की छवि बाज़ार द्वारा निर्धारित तथा मीडिया के ज़रिए प्रसारित है। पहले भी हमने नारी के विभिन्न रूप शील- अश्लील, ग्राहक, उपभोक्ता आदि मीडिया में देखा है इसके परे अन्य रूप भी देखने को मिलता है। मीडिया का अपने कर्तव्य क्षेत्र से ही संकुचित होता दिखाई पड़ रहा है। मीडिया के केन्द्रीकरण की वजह से समाचारों का गलत इस्तेमाल हो रहा है और समाज पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

अल्पना मिश्र की कहनी 'उनकी व्यस्तता' के द्वारा कहानीकार ने मीडिया के अनैतिक एवं अमानवीय व्यवहार का जिक्र किया है। स्त्री छवि को विकृत रूप चित्रित करने में मीडिया हिचकती नहीं। यह रूझान मीडिया की मुनाफाकर्मी तथा बाज़ार के प्रति वफादारी पर जोर देता है। बाज़ार हड़पने के लिए किस तरह वह मूल समाचार में भटकावा पैदा कर तथ्य को विचारहीन कोटी में प्रस्तुत करता है। इसका प्रभाव लोगों पर किस प्रकार होगा यह सोचता नहीं है। विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न तरीके से इसका असर होता है। कहानी में बहुत से मुद्दों को प्रस्तुत किया गया है, इसमें एक मुद्दा इस समस्या से संबन्धित है वह सराहनीय है। टी. वी में ब्रेकिंग न्यूज के रूप में यह घटना दिखाई जा रही है। बाहरी तौर पर देखने से यह एक सूचना मात्र है लेकिन इसका आन्तरिक पक्ष समाज की रूपरेखा और उसके आदर्शों तक को प्रभावित करने के लिए सक्षम रहता है। असल में इस ब्रेकिंग न्यूज से शिकार को कोई फायदा नहीं, न ही उसे इस समस्या से छुटकारा पाने की नयी राह उसके लिए जीवन और उसका चरित्र पहले की अपेक्षा अभिशप्त पड़ गया। हमें यहाँ मीडिया की नज़रिया बाज़ार में तब्दील हो जाने की भयंकर सत्य की ओर कहानीकार उद्घाटित करती है। आगे कहानी में रिपोर्टर द्वारा फरमाए गए वचन देखिए, 'देखिए, भारतीय सभ्यता, संस्कृति पर कितना, कितना बड़ा तमाचा है यह लड़कियाँ शर्म लाज छोड़कर अब कदम उठा रही हैं। उदाहरण है ये भले घर की बहू, जो अर्धनग्न अवस्था में दिल्ली की सड़कों पर भागती हुई पाई गई। और ये देखिए, उसकी पीठ, बाँह पर कटे-फटे के निशान, निशान गवाह हैं उसकी दर्दनाक दास्ताँ के।' (अल्पना मित्र, कब्र भी कैद ओ जंजीरें भी, पृ. 78) यहाँ एक ओर उसे बेशर्म औरत का ताज भी पहना दिया। विरेधाभास की स्थिति में डालने की साजिश चल रही है। यह साजिश वैश्विक बाज़ार के विस्तार कराने के साथ व्यापारी मीडिया को पनपने का अवसर मिलता है। इससे कार्यक्रमों की गुणवत्ता और सार्थकता की बात नहीं के बराबर होता है। समाचार चैनलों में इन समाचारों को वाद-विवाद के घेरे में लाये जाते हैं जिसे चौबीसों घण्टे दिखाए जाते हैं। जिससे मीडिया का उद्देश्य सनसनी, उत्तेजना पैदा करके उसकी रेटिंग बढ़ाना है। साथ ही कहानी में यह भी जोड़ देती है कि, 'एहतियातन लड़की की तसवीर को पीठ की तरफ से धुंधलाकर के दिखाया जा रहा है। साफ-साफ दिखाना जनता की कामोत्तेजना को भड़काना होगा।' (वहीं, पृ. 28) यहाँ हम देख सकते हैं कि एक ही सूचना को कितने-कितने ढंग से चित्रित करते हैं।

निष्कर्षतः कहें तो मीडिया अपने एथिक्स से छूट रही है। यदि पहले जमाने में आदर्श मीडिया का यथार्थ हो तो आज बाजार ही सर्वलक्ष्य है। जिसमें सूचनायें बदलती रहती हैं। अगले चौबीस घण्टे नयी सूचना के साथ वे प्रस्तुत होता है यही आज की मीडिया नीति है। मीडिया अपने लक्ष्य से बाहर होता जा रहा है और अपसंस्कृति का पाठ सिखा रही है। मीडिया के इस दुष्प्रभाव का आकलन करना जरूरी है वरना सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में इसकी उथल-पुथल और अधिक गहराई को छू लेगी। इस भयानक स्थिति को समकालीन हिंदी कहानी चित्रित करती है और साथ ही प्रतिरोध का आह्वान भी देती है ।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
निर्मला कॉलेज, मुवाट्टुपुझा,केरल
9496332394

बदलते परिवार बदलती मानसिकता
('चीफ की दावत' और 'वापसी' के संदर्भ में)

डॉ.गोपकुमार. जी

समकालीन हिन्दी कहानी जगत के दो बहुमूखी हस्ताक्षर हैं भीष्मसाहनी और उषा प्रियंवदा। दोनों का साहित्यिक क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं समृद्ध है, तो भी कहानिकार के रूप में व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। भीष्मसाहनी की कहानियों में अपने युग यथार्थ से गहरा लगाव है । समाज में व्याप्त शोषण, अवसरवाद भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता आदि को चीर-फाटकर उन्होंने अपनी रचनाओं में दिखा दिया है । अपनी कहानियों द्वारा तत्कालीन जीवन की स्थितियों के प्रति असंतोष प्रकट करने के साथ परिवर्तनशील समाज का सपना भी उन्होंने देखा है । उषा प्रियंवदा की कहानियों में भारतीय और विदेशी परिवेश हम बराबर देख सकते हैं। आधुनिक जीवन की विसंगतियों, च्युत होते पारिवारिक सम्बन्ध, आर्थिक-स्थिति का परिवर्तन, रूढ-मूल जीवन में होनेवाला परिवर्तन आदि की अति-सूक्ष्म वर्णन के साथ अपने ही घर में आत्मीयता के अभाव में अकेलेपन का अनुभव करनेवाले व्यक्ति के जीवन का मार्मिक चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है ।

चीफ की दावत (भीष्मसाहनी) और वापसी (उषा प्रियंवदा) आधुनिक युग-यथार्थता को प्रकट करनेवाली दो सशक्त कहानियाँ हैं । 'चीफ की दावत' आधुनिकता के मोह में व्यर्थ हो रहे मानवीय सम्बन्धों की कहानी है तो 'वापसी' एक ऐसी कहानी है जो वर्षों तक अपने परिवार से अलग व दूर रहकर उसके कल्याण के लिए ही नौकरी करके जीवन विताते है और रिटयर होकर शेष जीवन सुख और शाँति से विताने के मोह में घर लौट आता है, परंतु अपने घर लौट आए उस आदमी को घर के अन्य सदस्य उपेक्षा भाव से ही स्वीकार करते हैं । उनकी पत्नी तक का बर्ताव उसे दुःखी बना देता है । अंत में सबकुछ छोड़कर वापस चला जाता है ।

दोनों कहानियों में आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन की त्रासद परिस्थितियों का चित्रण अलग अलग कथा सॅदर्भ से अभिव्यक्त किया गया है । आधुनिक मध्यवर्ग की मानसिकता की पहचान करना मुश्किल है। वह स्वार्थपरकता एवं उपयोगितावाद पर अडिग रहता है । अपनी स्वार्थता की परिरक्षा करना हर एक का लक्ष्य है । यहाँ आत्मीयता का कोई स्थान नहीं है । 'चीफ की दावत ' के माँ और बेटे के बीच का संबंध सिर्फ अप्रधान और उपयोगितावादी है । अपनी पदोन्नति के लिए चीफ को दावत देकर खुश करना चाहनेवाले बेटे के मन में बूढी, अनपढ़ी गाँवार माँ घर की पालतू चीज़ जैसी ही है । लेकिन अचानक हुई माँ और चीफ की भेंट ने उसके मन का भाव एकदम उलटा-पुलटा कर दिया। अपने प्रमोशन में माँ की उपयोगिता उसे महसूस हुई, तब भी वह अपने स्वार्थ से बढ़कर कुछ नया वह नहीं सोचता । बेचारी माँ ने अपने को बेटे के सुख-दुःख में विलीन कर दिया है, फिर भी उसकी असहायता पाठकों के दिल को छू सकती है ।

'वापसी' के प्रमुख पात्र गजाधर बाबु समाज के ऐसे वर्गों का प्रतीक है जो अपने घर से दूर या विदेश में जाकर परिवार के लिए तनतोड मेहनत करता है और उनको अनेकानेक सुविधाऐं प्रदान करते हैं । लेकिन अंत में अपने यही परिवारवालों के बीच अनफिट बन जाता है।

दोनों कहानियों में मध्यवगीय विडंबनामय जीवन की गति-विगतियों की चर्चा हुई है। आजकल मध्यवर्गीय समाज में -तनाव, झूठा-दिखावा, आडंबर, स्वार्थ आदि बडी मात्रा में भरे पड़े हैं। उसके लिए हीन-से हीन कर्म करने को कोई लज्जा नहीं है। अपना सर्वस्व नष्ट करके बेटे को पढ़ाती माँ रामनाथ को आज एक नगण्य वस्तु बन गयी है। वह माँ की बुढापा, आँखों की प्रकाशहीनता, क्षीणावस्था पर चिन्तित नहीं वरन माँ को अधिकाधिक बोझ देने को तैयार होते हैं । एक ओर अपनी असंतुष्ट बूढ़ी माँ को चीफ से छिपाकर रखना चाहता है तो दूसरी ओर संयोगवश चीफ को बूढी माँ का गँवारपन पसंद आता है तो चीफ को अधिक रिझाने के लिए कोई भी ढोंग कराने में शामनाथ को संकोच का अनुभव नहीं होता । फुलकारी बनाने को कहते समय और हरिद्वार जाने की इच्छा कहते समय शामनाथ की स्वार्थपरकता समाने आती है। 'वापसी ' के गजाधरबाबु की अवस्था उससे भिन्न नहीं है। स्वयं सारा बोझ ढोकर परिवार के लिए गजाधरबाबु को जीना पडा, लेकिन जीवन के सायंकाल आते-आते उनके सामने एक शून्यता छा गई, वह उसको सहने के परे थे । उसको स्वयं अनुभव हुआ कि वह घर में एक नगण्य वस्तु है। उसका संबंध और आत्मीयता कोई नहीं चाहता हैं। पत्नी, बेटा, बेटी, बहु सब उससे अलग रहना चाहते है । मध्यवर्गीय पारिवारिक संबंधों में बड़ी मात्रा में खाई हुई है । परिवारिक संबधों का सूत्र दुर हो गया है। गजाधरबाबु को नहीं, उससे कमाये पैसे को सब चाहते है। अंत में वह उस आत्मपीडित स्थिति से बचने के लिए सब-कुछ छोडकर और किसी नौकरी ढूँढ़ पाकर वापस चला जाता है ।

मध्यवर्गीय भारतीय जन-मानस की त्रासद मनोवृत्तियों का चित्रण करना दोनों कहानियों का लक्ष्य है। समाज में मध्यवर्ग अन्य दो वर्गों से ज्यादा है। बदलते मूल्यों एवं सरकारों का पहला शिकार भी यह वर्ग है। इसलिए उनकी मानसिक प्रतिक्रिया समाज के हर क्षेत्र में तुरंत फैल जाती है। मध्यवर्ग नकलेपन के शिकार भी है। ये वर्ग आँखें मूंदकर सबको स्वीकार करने के लिए आगे बढते है। गुण-दोष का ध्यान किये बिना नवीनता के चक्कर में पड जाते है। परिणाम यह है कि वे वर्ग पूर्णतःआत्म केन्द्रित एवं दंभ के चंगुल में गिर जाते हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की भारतीय समाजिक अर्थिक तथा साँस्कृतिक परिवर्तन के यथार्थ को इन कहानियों में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। आगोलीकरण और भूमंडलीकरण मध्यवर्गीय मानसिकता में है। वह उस मोह में गिरा कर अपने को खो बैठता है। ये पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करके हमारे परंपरागत मूल्यों पर खतरा पैदा करते है और परिवारिक विघटन और उथल-पुथल का कारण भी बन जाते है।

अंत में कहा जा सकता है कि दोनों कहानियाँ बदलती ज़िन्दगी की मूल्ययहीनता की ओर प्रश्नचिह्न डालती हैं । शामनाथ की माँ और गजाधर बाबु आज भी हमारे सामने मौजूद है । दोनों कहानियों की कथा काल्पनिक होते हुए भी वर्ण्य विषय प्रासंगिक है। बदलते परिवेश में भारतीय पारिवारिक व्यवस्था शिथिल हो रही है और कौटुम्बिक एवं सामाजिक मूल्य की च्युति होती जा रही है । एक ही छत के नीचे रहनेवालों के बीच में भी आत्मीयता और रागात्मकता का भाव नहीं के बराबर है। इस दृष्टि पर नज़र रखें तो कहा जा सकता है कि 'चीफ़ की दावत' और 'वापसी ' बदलते परिवार और बदलती मानसिकता को उजागर करनेवाली अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

असिस्टेंट प्रोफसर ऑफ हिंदी
बीजेएम
सर्कारी कॉलेज
चवरा, कोल्लम

नादिरा बब्बार की नारी पात्र

('सकूबाई' और ठजी जैसी आपकी मर्ज़ी' नाटकों के संदर्भ में)

अजिता कुमारी.ए.आर

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य में करीब चालीस सालों से सक्रिय एवं गतिमय रूप से आगे बढनेवाली महिला रंगकर्मी है नादिरा बब्बार। उन्होंने अपनी रचनाओं में जितनी तीव्रता एवं लगन के साथ स्त्री की समस्याओं एवं घुटन को विषय बनाया, उससे स्त्री विमर्श का एक अलग रूप दृश्यमान होता है। नादिरा बब्बार ने नारी मन की गहराइयों, अंतर्द्वंद्वों एवं आपबीती घटनाओं को अपनी रचनाओं में उकेरकर नारी अस्मिता को एक ज्वलंत मुद्रा के रूप में हृदय-स्पर्शी ढंग से हमारे सामने प्रतिष्ठित की है।

नादिरा बब्बार अपनी नारी पात्रों द्वारा यह दिखा देती है कि प्राचीन काल से लेकर इक्कीसवीं सदी तक आने पर भी नारी शोषण, दमन एवं पीड़ा का पात्र बनती रहती हैं। उसके प्रति जो शोषण चलता रहा उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया, बल्कि इतना मात्र बदलाव आया कि शोषण का परिवेश एवं रीति मात्र बदल गयी है। प्राचीन काल में नारी इतनी शिक्षित या कामकाजी नहीं थी, वह परिवार में सिमट गयी तो उसे परिवार या समाज से कई दबावों एवं पीडाएँ सहना पड़ा। लेकिन इक्कीसवीं सदी तक आने पर शोषण का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया। अब तो स्त्री समाज के विविध क्षेत्रों से संबद्ध रहकर जीने के कारण उन्हें सब कहीं से शोषण सहना पड़ा। पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, औद्येगिक आदि सभी क्षेत्र शोषण का केन्द्र बन गए हैं। इसका मूल कारण है हमारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था । इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुषों ने स्त्री को केवल अपने नीचे का स्थान मात्र दिया है, उसे केवल अपनी भोग वस्तु या नौकरानी के अलावा समभावना से देखना नहीं चाहता। वे मान- मर्यादा की छाया में, घर की इज्जत के नाम पर, देवी कहकर स्त्री को चार दीवारों के भीतर कैदी बनाना चाहते हैं। ऐसे एक समाज से सदियों से होते आए शोषण, दमन एवं पितृसत्तात्मक बेडियों को लाँघने के लिए आवाज़ उठायी स्त्री-चेतना को उनकी रचनाओं में देख सकते हैं।

नादिरा बब्बार के नाटकों में जो नारी पात्र है वे सजीव, सक्रिय एवं प्रतिक्रिया संपन्न हैं। आधुनिकता के नए दबावों ने स्त्री की स्थिति को जितना जटिल बनाया है उसके बीच भी वे अपने को नए ढंग से पारिभाषित करने का संघर्ष भी करता रहा। यही संघर्ष या अस्मिता की लडाई नादिरा बब्बार की नारी पात्रों में विद्यमान है। परिवार, समाज, शिक्षा, राजनीति, धर्म, नौकरी, विवाह आदि सभी क्षेत्रों में स्त्री का शोषण होता रहता है। साथ ही साथ दहेज, बाल-विवाह आदि कुरीतियाँ स्त्री के जीवन को अधिक कष्टपूर्ण बना देती हैं। इन सभी समस्याओं एवं परिस्थितियों के कारण शोषण का पात्र बनने पर

भी नादिरा की नारी पात्र अपने परिवेश के खिलाफ, समस्याओं के खिलाफ प्रतिक्रिया करनेवाली हैं। वे पराजित होने के लिए नहीं, जीने के लिए, जीवन में सफल होने के लिए संघर्षरत हैं।

नादिरा बब्बार के एक नाटक का नाम 'जी जैसी आपकी मर्जी ' भी स्त्री स्वतंत्रता का परिचायक है। उनका नारी-जीवन संबंधी दृष्टिकोण इससे स्पष्ट होता है। वह तो यही चेतावनी देती है कि नारी होने के नाते अपनी जिंदगी किसी के लिए समाप्त करने या बरबाद करने के लिए नहीं, अपने लिए, अपनी इच्छा के अनुसार जीने के लिए हैं। स्त्री स्वतंत्र होने की , अपने परिवेशों से ऊपर उठकर हिम्मत के साथ आगे बढने का संदेश इसमें है। उसका और एक नाटक है 'सकुबाई' । इसमें भी नायिका सकुबाई या शकुन्तला द्वारा स्त्री समाज को यही दृष्टि दिखा देती है कि साहस एवं कठिन मेहनत के द्वारा नारी जीवन को कैसे सफल बना सकते हैं।

नारी का शोषण किन-किन रूपों में हो रहा है- इसका स्पष्ट चित्रण इन नाटकों में हैं। सकुबाई की नारी पात्र सकुबाई हो, उसकी माँ हो या बहन वासंती हो कई शोषणों को सहकर ही जीते हैं। फिर भी वे अपना स्वाभिमान खोना नहीं चाहता। एक बार सकुबाई की माँ से सेठानी ने उसके वेश-विधान में परिवर्तन लाने को कहा तो उसने इस प्रकार उत्तर दिया- 'काम करने आए हैं। अपना रिवाज़ बेचने नहीं। ... रखना है तो रखो नहीं तो राम राम।' [1] सकु की माँ स्त्री सशक्तीकरण का एक उत्तम दृष्टांत के रूप में खड़ी है। जब उसका पति बीमार होकर काम को जाने में असमर्थ होते हैं तब स्वयं घर का बोझ अपने कंधों पर लादने को वह तैयार हो जाती है। वह काम करने के साथ अपने पति का पालन भी करके अपने दायित्व को भी निभा देती है।

स्त्री है, इसलिए स्त्रियों को बचपन से ही जीने के लिए, जीविका चलाने के लिए कमरतोड़ मेहनत करना पड़ता है। सकुबाई की नारी पात्र को पढ़ने की इच्छा होने पर भी वह पाठशाला तक भी नहीं गयी थी। कठिन मेहनत के बाद भी भरपेट भोजन उन्हें नहीं मिला, क्योंकि इसकी कमाई से ही भाई को अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ाना था। 'जी जैसी आपकी मर्जी' की पात्र दीपा, वर्षा, बबली और उसकी बहनें शिक्षित हैं, लेकिन उनको भी घर का काम करने की वजह से खेलना, पढना आदि निषिद्ध था और अच्छा कपड़ा भी नहीं मिलता था। परिवार में दमन होने पर भी वह चुपकर सहनेवाली नहीं थी। खेलने के बाद आए भाई को पानी पिलाने के लिए कही दादी से दीपा पूछती है- 'क्या भैया अपने आप पानी नहीं पी सकते?'[2] उसी प्रकार जब दीदी ने बुआ के बेटे से टी. वी की आवाज़ कम करने को कहा तो इससे क्रुद्ध बाबा ने दीदी और अम्मा को मारा । तब बुआ के और एक बेटे के चूतड़ों पर गरम प्रेस लगाकर दीपा ने इसका प्रतिशोध किया।

छोटी लड़की हो या स्त्री, आज अपने परिवार में भी सुरक्षित नहीं है। छोटी बच्ची भी अपने सगे-संबंधियों द्वारा यौन शोषण का शिकार बन जाती है। जिन लोगों पर उनके पालन का दायित्व है वही उसे झकझोर कर डालते हैं। छोटी लडकी सकुबाई को भी

अपने छोटे मामा द्वारा बलात्कार सहना पड़ा। निराश्रय एवं बेघर होने पर भी सकु की माँ यह सहकर वहाँ जीने को तैयार नहीं थी। वह अपने बच्चों के साथ उसी वक्त वहाँ से निकली। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में तो सुलताना, जो एक लड़के को जन्म न दे सकने के कारण अपने पति द्वारा उपेक्षित होने पर भी अकेले काम करके अपनी बच्चियों का पालन किया। परिवारवालों ने उसकी इच्छा के विरुद्ध एक दूजे के साथ उसकी शादी करा दी। पति ने जब अपनी बेटी पर बलात्कार करने का श्रम किया तो वह उसे मार डालती हैं। जेल जाते वक्त स्वाभिमान एवं धीरज के साथ बेटी सहीबा से कहती है -'डरना मत बेटा, ये वक्त भी गुजर जाएगा। तुम यहीं रहना, ये हमारा ही घर है,फिर से पढाई शुरू करना । एकदम कडक होके जीना न किसी से ज्यादा हँसना, बोलना ना ही किसी पे यकीन करना और अपनी छोटी बहन सकीना का भी ध्यान रखना बेटा।'(3)

नादिरा की नारी पात्र शिक्षा का महत्व जाननेवाली हैं। इसलिए कठिन मेहनत करके भी अपनी बेटी को शिक्षित करना सकुबाई का लक्ष्य था। लेकिन नादिरा जी यह सच्चाई भी दिखा देती है कि शिक्षित होने से मात्र स्त्री परिवार या समाज में सुखी नहीं होती । शिक्षित नारी शिक्षित एवं कामकाजी पुरुष के साथ विवाहिता होने पर भी वे मन से संतुष्ट नहीं हैं। पुरुष स्त्री को केवल अपनी वासना वृत्ति का साधन या अपनी सेविका मात्र समझते हैं । इसके विरुद्ध बबली आवाज़ उठाती हैं - 'मेरी भी तो कुछ तमन्नाएँ हैं और मेरा भी तो जिस्म है, इसकी भी कुछ इच्छाएँ हैं । सारा जीवन एक नाटक की तरह तो नहीं जीया जा सकता।'(4) इस आक्रोश में नादिरा का यथार्थ नारी रूप हमारे सामने आ जाता है। और एक स्थान में बबली कहती हैं- 'हाँ मैं इन्हें खुश रखना चाहती हूँ, मैं एक बहुत अच्छी wife बनना चाहती हूँ ... तो .... मतलब ....मैं अंधी, बहरी और गूँगी बन जाउँ क्यों ....क्यों मर्दों को ये हक होता है कि वो सैकडों affair करें लेकिन फिर भी फरिश्तों जैसे बने रहें।'(5)

समाज में ऐसी कई लड़कियाँ हैं जिनका परिवार में सुरक्षा एवं प्यार न मिलने के कारण जीवन बरबाद हो जाता है। वासंती ऐसी एक लड़की है। बचपन से ही माँ वासंती और बाप को गाँव में छोड़कर काम के लिए शहर जाने को मज़बूर हो जाती है। इसलिए वासंती दिशाहीन हो गयी और एक के बाद दूसरे लड़के के साथ जीकर अंत में आत्महत्या में शरण लेती हैं। तब भी वह अपनी माँ या परिवारवालों के लिए बाध्य नहीं होती।

स्त्री की नियति है कि उन्हें सदा परिवार का, पति का ध्यान रखना, शिष्टाचार एवं संस्कार का पालन करना। चाहे पुरुष जो भी करें उसे सहकर उसके लिए जीना है। वर्षा की काकी ने पति की दूसरी स्त्री के साथ जीने की खबर सुनकर जब आत्महत्या की तब वर्षा क्रुद्ध होकर कहती है- 'क्यों ऐसा होता है हम लोगों को जो पाँव की जूती भी नहीं समझते, उनके लिए अपनी जान दे देते हैं, क्यों हमें बचपन से कूट-कूट कर ये सिखाया जाता है कि पति जैसा भी हो adjust करो, क्योंकि अपने पति को

सुखी रखने में ही हमारी सबसे बड़ी कामयाबी है। और हमारा सुख, हमारी आशाएँ, हमारे सपने, उनका क्या?'[6] और एक स्थान पर वह पूछती है - 'हम लोग मिडिल क्लास लेडीज़, बस सारी जिंदगी डर-डर के, मर-मर के जीते हैं । ऐसा क्यों होता है ? क्यों हम लोग अपने आपको ऐसा बनने देते हैं? क्यों?'[7] इसी प्रकार के कई प्रश्न नादिरा बब्बार के नारी पात्र समाज से पूछती हैं। लेकिन अभी तक उसका उत्तर प्राप्त नहीं है। फिर भी वह समाज पराश्रित रहना नहीं चाहता, यही उसकी विशेषता है।

किसी समस्या है तो उसका समाधान भी होना है। नादिरा बब्बार ने अपनी रचनाओं में जो समस्याएँ उजागर की हैं उन समस्याओं का समाधान ही उसकी रचनाओं की महत्वपूर्ण सफलता है। विपरीत परिस्थितियों में भी सकुबाई की बेटी साइली तो सुशिक्षित होकर युवा कवयित्रि बन जाती है और उसे इनाम भी मिलता है। इतना मात्र नहीं वह अपनी माँ से संबंधित कविता लिखकर पुस्तक उसे समर्पित भी करती है। फिर वह अपनी माँ को अपने बचपन में छूटी पढाई अब से शुरू करने को प्रोत्साहित भी करती है। ' ऐसा अविश्वास मत कर माँ ..... अब अपने अच्छे दिन आ गए हैं। तू पढ़ना चाहती थी न..? पढ़।'[8] अपने पति की हत्या कर जेल जाने पर भी सुलताना की बेटी सहीबा जीवन में पराजित होने के लिए तैयार नहीं थी। वह बारहवीं पास कर वकालत पढ़ने की तैयारियाँ शुरू कीं। एक रिश्ता आने पर वह कहती है - 'जब तक मैं वकील न बन जाउँ .... शादी नहीं करूगी।'[9]

निष्कर्षतः समाज या व्यक्ति के विकास के लिए या स्त्री समत्व के लिए नारा लगाने पर भी यहाँ के स्त्री समूह आज भी शोषित हैं। इनको दूर करने के लिए पुरुष के, समाज के मनोभाव में बदलाव लाना है। साथ ही साथ नादिरा बब्बार ने अपनी पात्र सुलताना द्वारा स्त्री जागरण के लिए जो संदेश दिया वह उल्लेखनीय है - 'रोने से कोई मुश्किलें हल नहीं होतीं।'[10] हाँ, अपने उत्थान का दायित्व दूसरे पर सौंपकर रोते रहने से कोई फायदा नहीं है, विपरीत परिस्थितियों एवं समस्याओं से लड़कर उसे अपने जीवन के अनुकूल बनाने का परिश्रम करना है। इससे मात्र जीवन में सफलता प्राप्त होती है। इसी संदेश को सार्थक बनानेवाली नारी पात्र नादिरा बब्बार के नाटकों में हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. नादिरा बब्बार, सकुबाई,(पृः 24)
2. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी,(पृ:15)
3. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी, (पृः 34-35)
4. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी, (पृः 38)
5. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी, (पृः 40)
6. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी, (पृः 23-24)
7. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी,(पृ:29)
8. नादिरा बब्बार, सकुबाई,(पृ :62-63)
9. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी,(पृः 34)
10. नादिरा बब्बार, जी जैसी आपकी मर्जी,(पृ : 29)

शोधार्थी
महाराजास कॉलेज
एरणाकुलम

'नदी के द्वीप' में नए सिरे से प्रतीक विधान

डॉ उषा कुमारी जे बी

एक कवि के रूप में ही नहीं, एक काव्याचार्य के रूप में अज्ञेय ने हिंदी काव्य क्षेत्र को संपन्न किया है। बड़ी मात्रा में छोटी-लंबी कविताएँ लिखकर, उन्होंने प्रयोगवाद और नयी कविता जैसे काव्यान्दोलनों को सुदृढ बनाया है। सृजन-क्षेत्र में नवीनता उनकी निजी विशेषता है। भाव पक्ष और शैली पक्ष में नए-नए प्रयोग करने में वे समर्थ रहे। इस कारण से ही, प्रयोग के लिए प्रयोग करने वाले कवि अज्ञेय, प्रयोगवाद के प्रमुख प्रवर्तक कवि के रूप में स्वीकृत हुए हैं। साहित्य क्षेत्र में उनका योगदान इतना महत्वपूर्ण रहा कि 1940 से 1960 तक का रचनाकल 'अज्ञेय युग' मानता जा रहा है। वे प्रकृति से इतने मिल रहे कि प्रकृति की हर वस्तु उनके काव्यों में बिंब और प्रतीक रूप में सहज रही।

1949 और 1955 के बीच प्रकाशित 'नदी के द्वीप' प्रकृति से गृहीत प्रतीकों पर आधृत एक कविता है, जिसमें एक ओर प्रकृति का उपदेशिका रूप परिलक्षित होता है, तो दूसरी ओर नदी और द्वीप के द्वारा व्यक्ति और समाज का अटूट संबंध व्यवहृत होता है। जैसे- 'हम नदी के द्वीप हैं।/हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर/स्त्रोतस्विनी बह जाय।'[1]

व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। अतएव समाज से जुडकर रहने में उसका अस्तित्व रहता है। वैसे ही द्वीप हमेशा नदी से जुडकर रहने में अपना स्थायित्व मानता है। ताकि नदी नहीं है तो द्वीप अस्थायी होता है। समाज सेवा व्यक्ति का परम कर्तव्य है। इसलिए समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति यथासाध्य प्रवृत्त रहता है। वैसे द्वीप भी नदी के प्रति समर्पण भाव रखता है।यहाँ अनुभूत सत्य यह है कि नदी ही द्वीप को आकार और अस्तित्व प्रदान कर देती है। नदी पर द्वीप का समर्पण भाव निम्न पंक्तियों में दर्शनीय होता है- 'किंतु हम हैं द्वीप।/हम धारा नहीं।/ स्थिर समर्पण है हमारा।'[2]

एक व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सारी अवस्थाएँ- शैशव, बचपन, यौवन, बुढापा-आदि समाज के विकास पर आधारित होती हैं। ठीक वैसे ही द्वीप का हर एक भाग-कोण, गलियाँ, किनारे, रेतीले भाग, सीमाएँ आदि नदी ही प्रदान कर देती है। अर्थात् नदी द्वारा द्वीप रूपायित होता है। 'माँ है वह, है इसी से हम बने हैं।'[3]

यहाँ कवि ने माँ के ममत्व पर इंगित कर दिया है। जिस प्रकार माँ बच्चे को जन्म देकर, ममता से पालन कर, उसे जीने योग्य बना देती है, उसी प्रकार नदी द्वारा द्वीप का निर्माण और पालन होता है।

'वह बृहत भूखंड से हमको मिलाती है।/और वह भूखंड अपना पितर है।'[4]

माँ अपना सहज गुण-मानवता-बच्चे को प्रदान करते हुए, उसको पिता का परिचय भी देती है। प्रस्तुत कविता में नदी इस ब्रह्मांड का परिचय द्वीप को देती है। यानी द्वीप के लिए ब्रह्मांड पिता समान है। नदी यहाँ द्वीप को भूखण्ड से इस प्रकार मिलाती है,

जैसे माता, पुत्र को पिता से मिलाती है।माँ के कहने पर पुत्र, पिता पर अपना विश्वास रखता है। कविता के अंत में कवि की प्रार्थना है,'माता, उसे फिर संस्कार तुम देना।'[5]

यहाँ सूचित किया जाता है कि माता, बच्चों को पालते समय जाने-अनजाने अपना संस्कार भी देती चली आती है। ऐसे ही हमारा संस्कार युग-युगों तक अनश्वर रहेगा। कवि के मतानुसार नदी को भी दायित्व निभाना है। क्योंकि नदी भी माँ है द्वीप की। द्वीप स्वयं इससे सहमत होता है-'माँ है वह! इसी से हम बने हैं।'[6]

नदी और द्वीप में अंतर यह है कि नदी की धारा बहती है, बल्कि द्वीप अटल रहता है। यहाँ द्वीप का विवेकी विचार यों अभिव्यक्त होता है, 'रेत बनकर हम सलिल को/तनिक गंदला ही करेंगे/अनुपयोगी ही बनाएँगे।'[7]

संकेतार्थ यह है कि नदी की धारा के साथ बहने पर द्वीप का अस्तित्व मिट जाएगा तथा वह रेत बनकर नदी के पानी को गंदा कर देगा। यही नहीं, द्वीप आशंकित होता है कि उसके बहने पर अपना वर्तमान रूप नष्ट हो जाएगा और उसकी नींव हिलते तो बाढ भी आ जाएगी।

कवि ने यहाँ इशारा किया है कि नदी की धारा के साथ बहकर पूरे पानी को गंदा और प्राकृतिक परिवेश को मलिन बनाने का मौका बहुतायत मिलने पर भी द्वीप उसके लिए कभी तैयार नहीं होता है। बाढ,आँधी और तूफान में पडकर नदी की धारा में जो-जो बदलाव आते हैं, उनसे प्रभावित न होकर, अपने अस्तित्व को बनाए रखने में द्वीप द्वारा स्वीकृत दृढ संकल्प मानव जीवन की सफलता के लिए प्रेरणादायक है।इससे यही मानव कल्याणकारी संदेश मिलता है कि सामाज की नूतन गति-विधियों में पडकर अपने अस्तित्व को बचाये रखने में मानवीय धर्म का पालन सबके लिए अनिवार्य है।

चिरकाल से ही प्रकृति में नदी और द्वीप प्रदृष्ट हैं। लेकिन आधुनिक कवि अज्ञेय द्वारा व्यक्ति और समाज के बीच के आत्मीय संबंध को प्रबल दिखाने के लिए प्रयुक्त प्रतीक-विधान -नदी और द्वीप -सर्वथा उचित प्रतीत हुआ है।ताकि इन प्रतीकों द्वारा पाठक,व्यक्ति और सामाजिक प्राणी होने के नाते,अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता आसानी से समझ सकते हैं। इस प्रकार सनातन मूल्य,मानवाधिकार,प्राकृतिक वैभव आदि बड़ी सहजता से पाठकों तक पहुँचाने से साहित्य धर्म निभाया जा सकता है।इस तौर पर अज्ञेय का महनीय श्रम गौरवान्वित महसूस होता है।

ध्यान देने की बात यह है कि प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में नदी और द्वीप के बीच का समझौता सचेतन प्राणियों के लिए प्रेरणादायक रहता है। इससे चेतित होकर मानव और प्रकृति एक दूसरे का पूरक बने रहे तो मानव राशि की रक्षा संभव होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.लोकप्रिय साहित्यकार अज्ञेय सं- डॉ.आर.अई.शांति, डॉ. सुमा.एस, पृष्ठ संख्या 57

2.वही- पृष्ठ संख्या- 57

3.वही- पृष्ठ संख्या- 57

4.वही- पृष्ठ संख्या- 57

5.वही- पृष्ठ संख्या- 58

6.वही- पृष्ठ संख्या- 57

7.वही- पृष्ठ संख्या- 57

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग

एम.जी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

आत्मकथा

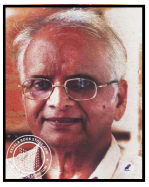

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

सातवाँ देवपद

संताप की दशा

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

1954 फरवरी के छः तारीख को, पूरूरुट्टाति नक्षत्र के दिन हमारे पिताजी स्वर्ग सिधारे थे। उस समय वे केवल 44 वर्ष के थे और हमारी माताजी की उम्र 39 वर्ष थी। उनके और हम तीनों संतानों के जन्मपत्र सुप्रसिद्ध ज्योतिषी श्री कल्याणकृष्णन ने अपने हाथों लिखकर किसी ग्रंथ के रूप में तैयार करके हमें दिया था। एक दिन माँ ने उसमें से अपने और पिताजी के जन्मपत्र फाड़ डाले। मेरे पूछने पर वे यह कह कर रो पड़ी कि अब इनकी क्या ज़रूरत है? बाद में वह ग्रंथ भी कहीं खो गया था। मैं जब नागरकोइल के कॉलेज में पढ़ रहा था तब मेरी चौदह वर्ष की बहिन हरिप्पाटु के हाई स्कूल में पढ़ रही थी और मेरा बारहवीं वर्ष का छोटा भाई भी विद्यार्थी था। मेरी बहिन को संगीत एवं सिलाई सिखाने की व्यवस्था घर पर की गई थी। पुत्तियिल घराने के बँटवारे के अनुसार हमारी शाखा को अनेक एकड़ के खेत और ज़मीन मिले थे। नए निवास-स्थान भी हमें मिला था। नई ज़िंदगी को व्यवस्थापित करने के कठिन परिश्रम के फलस्वरूप पिताजी रोगग्रस्त हो गए थे। उनके निधन के बाद हमारी माँ अपनी तीनों संतानों के भविष्य के बारे में अत्यंत व्याकुल थीं। इसके अलावा दूर तक व्याप्त भूमि की देख-रेख करना, खेतीबारी कराना, घर की आमदनी की व्यवस्था करना - अकेली माँ क्या कर सकती थी? हमारा खानदान एवं परिवार के लोग दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर है जहाँ पहुँचने के लिए या तो पैदल चलना था या बाईसिकिल लेना था और नहीं तो हरिप्पाटु से टैक्सी कार बुलाना था। हाँ; खेती पर जाने के लिए हमारी छः - सात नौकाएं थीं और उसके नाविक भी थे। खेती-बारी तथा अन्य काम के लिए एक विशेष कर्मचारी और ज़रूरी नौकर चाकर नियुक्त किए गए, शेष रसोईघर के काम करने के लिए कोई 'पाट्टियम्मा' (ब्राह्मण स्त्री) भी आया करती थी।

आचार के अनुसार पिताजी की अंत्येष्टि के अगले दिन से नित्य श्राद्ध का अनुष्ठान हमने शुरू किया। इसके सिवा इकतालीसवें दिन के विशेष श्राद्ध का अनुष्ठान भी हमने विधि के अनुसार किया। ज़िंदगी की इन्हीं कठिन परिस्थितियों से टकरा

कर मेरे आगे की पढ़ाई में कोई रुकावट न हो यह तो माँ ने निश्चित किया था। इसलिए उनकी आज्ञा पाकर अपनी वार्षिक परीक्षा देने के लिए मैं नागरकोइल गया था। मानसिक संघर्ष एवं परिवर्तित पारिवारिक वातावरण के कारण परीक्षा की तैयारियाँ मैं ठीक से न कर पाया था। अतः पराजय सुनिश्चित था। केवल द्वितीय भाषा मलयालम की परीक्षा में मैं उत्तीर्ण हो गया था; अंग्रेज़ी तथा वैज्ञानिक विषयों में पराजित हो गया था। (हाँ; परीक्षा के बाद दो महीने तक घर रह कर घर के दायित्वों का निर्वहण मैंने भलीभाँति समझ लिया। पिताजी का भानजा श्री सुब्रह्मण्य शर्मा एवं हमारे चाचाजी श्री अप्पुक्कुट्टन (एस. नारायणन मूत्ततु) - इन दोनों ने समय समय पर आवश्यक उपदेश एवं निर्देश देकर हमारी बहुत बड़ी सहायता की थी। अब मेरे आगे की पढ़ाई की समस्या उठी। घर छोड़ दूर जाकर पढ़ना बिलकुल असंभव था। अंत में बहुत सोच-विचार के बाद माँ ने यह निर्णय सुनाया कि मुझे तिरुवनंतपुरम में रह कर अपनी पढ़ाई जारी रखनी है।

तिरुवनंतपुरम के मित्रानंदपुरं के हमारे मकान में अनेक नाते-रिश्तेदार अपनी पढ़ाई के लिए रहते थे। मैं भी वहाँ उनके साथ रहने लगा और तडके उठकर नहा-धोकर पिताजी के श्राद्ध कर्म करता था। उसके बाद कॉफी पीकर मैं डोवेल कॉलेज (Dowell College) जाता था। 1955 में मैं इंटर मीडियट पास हो गया हालाँकि इस बीच अपना स्वास्थ्य बहुत बिगड गया था। ज़िंदगी की अत्यंत संतप्त दशा थी यह।

एक साल के बाद हम लोगों ने रामेश्वरम (तमिलनाडु) जाकर श्राद्ध के सारे अनुष्ठानों की मंगलपूर्ण परिसमाप्ति की थी। पिताजी के पूज्य गुरु श्री शेषाद्रि अय्यर का भागिनेय था श्री सुब्रह्मण्य अय्यर। तिरुवनंतपुरम के शासक महाराजा के प्रतिनिधि बन वे रामेश्वरम (तमिलनाडु) के मंदिर में काम करते थे। हमें उनकी सहायता मिली थी। सागर-किनारे का श्राद्ध, मंदिर के भीतरवाले अनेक तीर्थों का पुण्य-स्नान और भगवान के दर्शन - ये सब उन्हीं की कृपा से हम अच्छी तरह कर सके थे। रामेश्वरम से लौट आकर घर पर विष्णुबलि आदि पूजा हम ने की थी और लोगों को दावत भी दी। हर साल पिताजी के श्राद्ध कर्म के साथ गरीबों को भोजन भी हमने दिया था। धार्मिक एवं आध्यात्मिक आचार-अनुष्ठानों में माँ का पक्का विश्वास था। उनमें वे कभी कोई कमी न आने देती थी। इसलिए पिताजी के अभाव में अपने परिवार के नौ पूर्वजों का श्राद्ध मुझे करना था। 1996 को मैंने काशी जाकर पवित्र गंगा नदी में हिरण्य श्राद्ध किया और उसके बाद केवल पिताजी का सालाना श्राद्ध मैं किया करता था। (श्राद्ध करने में कोई असुविधा हो तो तीर्थों में जाकर हिरण्य श्राद्ध करने की विधि है।) 2009 फरवरी के सत्रहवीं तारीख को माँ का निधन हुआ तो उनका श्राद्ध भी करके मैंने अपने पूर्वजों का ऋण चुकाया था।

(क्रमशः)

श्री. आरीफ मुहम्मद खान के.एन.रिदामोल को 'युणीकिली मी' देशीय पुरस्कार प्रदान कर रहे हैं।

मंत्री अधिवक्ता मधु बी को नागरी परिषद के कार्यकर्ताओं द्वारा आदर।

डॉ.सुरेश ऋतुपर्ण अपनी किताबें सभा के मंत्री को भेंट कर रहे हैं

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-12-2023
Date of posting : 20th of Every month

KERALJYOTI

DECEMBER 2023

Vol. No. 60, Issue No.09
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार एवं केंद्रीय साहित्य अकादमी के सदस्य डॉ.सुरेश ऋतुपर्ण सभा में आयोजित सम्मेलन में भाषण दे रहे हैं।

अखिल भारतीय नागरी परिषद के वार्षिक सम्मेलन में सभा के मंत्री दीप प्रज्वलन कर रहे हैं।

श्रोतागण

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व. मधु बी द्वारा प्रकाशित; राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित तथा प्रो.डी.तंकप्पन नायर और डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014; Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Ranjith Revisailam